श्रीधादर्श

३२

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
जुलाई १९९७

शोधादर्श

३२

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
जुलाई १९९७

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक : (स्व.) डा० ज्योति प्रसाद जैन

प्रबन्ध/प्रधान सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री अजित प्रसाद जैन
महामन्त्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ–२२६ ००४

सम्पादक मंडल : डा० शशि कान्त, श्री रमा कान्त जैन

★ विषय-क्रम ★

१. गुरुगुण-कीर्तन—वादीभसिंह —श्री रमा कान्त जैन ६३

२. Some Common Features in Jaina and Buddhist Traditions and Art-डा० ज्योति प्रसाद जैन ६८

३. सम्पादकीय—कलिकाल तीर्थंकर —श्री अजित प्रसाद जैन १०१

४. भगवान महावीर —श्री त्रिभुवन प्रसाद तिवारी १०६

५. आडम्बर में जकड़ा हुआ धर्म —आचार्य राजकुमार जैन ११०

६. ग्यारसपुर के दिगम्बर जैन मन्दिर —श्री गुलाब चन्द्र जैन ११५

७. शोध सारांश—जैन योग और बौद्ध योग का तुलनात्मक अध्ययन–डा० (श्रीमती) सुधा जैन सिन्हा १२२

८. चिन्तन कण : चक्रवर्ती भरत —श्री अजित प्रसाद जैन १२७

९. विचार-विन्दु : क्या वेद में इतिहास है?–आचार्य शिवचन्द्र शर्मा १३१

१०. जैनमतानुसार विवाह पद्धति का आरम्भ —डा० एम० डि० वसन्तराज १३५

११. परिचर्चा : पुण्य क्या है ? श्रमण कौन है ? —श्री शान्तिलाल के० शहा १३९

उपादेय किम् ? —डा० शशि कान्त १४०

१२. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश प्रगति प्रतिवेदन वर्ष १९९६-९७ —श्री अजित प्रसाद जैन १४५

१३. इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की पुण्य तिथि —श्री रमा कान्त जैन १५०

१४. रिपोर्ट : लखनऊ में 'जैनविद्या के विविध आयाम' पर संगोष्ठी —डा० अरविन्द कुमार श्रीवास्तव १५३

१५. साहित्य सत्कार :
महापुराण-कथाकुञ्ज; जैन भजन सौरभ;
मोक्षमार्ग प्रदीप; धर्म ज्ञान विकास (प्रथम व द्वितीय भाग);
हमारा भोजन, मुक्तक एवं सत्य कथायें; कर्मभूमि आर्टस ग्रुप
स्मारिका; करमदंडा की उपलब्धियां; रामकथा संग्रहालय,
अयोध्या—कला-सम्पदा—संक्षिप्त परिचायिका;
Jinamanjari —श्री रमा कान्त जैन १५६
शासन देवता आणि जिन शासन; कौशाम्बी गढ़; पञ्चाल;
श्रमण; तुलसी प्रज्ञा —डा० शशि कान्त १६२
१६. समाचार विमर्श : —श्री अजित प्रसाद जैन
ॐ ह्रीं ज्ञानमत्यै नमः १६७
आचार्य सन्मतिसागर प्रकरण—जस का तस १६६
भट्टारक जी द्वारा वाहन प्रयोग का त्याग १७५
एक नई भट्टारक पीठ की स्थापना १७८
पावापुरी में प्राचीन चरण बदले गये ? १७६
महासभा प्रबन्धकारिणी की बैठक १८३
१७. अभिनन्दन १८७
१८. समाचार विविधा १६०
१६. शोक संवेदन १६२
२०. छपते-छपते : अध्यक्ष श्री सुमेर चन्द जैन पाटनी का निधन १६४
२१. आभार १६५
२२. शुद्धि परिशोधन १६६
२३. पाठकों की दृष्टि में १६६
२४. इस अंक के लेखक कवर पृष्ठ

मूल्य १५ रु०
वार्षिक शुल्क ४० रु० (मनीआर्डर द्वारा प्रेष्य)

आवश्यक

कृपया वर्ष १९९७ का वार्षिक शुल्क ४० रु० (चालीस रुपये) मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' को यथाशीघ्र भेजने का अनुग्रह करें।

—प्रबन्ध सम्पादक

आवश्यक सूचना

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमन्त्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिए और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासम्भव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में **समीक्षार्थ** पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक / पत्रिका सम्पादक को 'ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

—प्रबन्ध सम्पादक

निवेदन

सुधि पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा उद्‌बोधन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

— सम्पादक मण्डल

मुद्रक : रत्न-ज्योति प्रेस, चारबाग, लखनऊ-४ (उ० प्र०)

शोधादर्श-३२

वीर निर्वाण संवत् २५२३ जुलाई १९९७ ई०

गुरुगुण-कीर्तन

वादीभसिंह

१. सकल–भुवनपालानम्र–मूर्द्धविबद्ध–
स्फुरित–मुकुट–चूड़ालीढ–पादारविन्दः ।
मदवदाखिल–वादीभेन्द्र-कुम्भ-प्रभेदी
गणभृद् **अजितसेनो** भाति **वादीभसिंहः** ।।

–मल्लिषेण प्रशस्ति

भावार्थ—विनत समस्त भूपालों के मस्तक में बंधे मुकुटों की शिरोमणि की कान्ति से जिनके चरण-कमल खिल रहे थे ऐसे वह गणभृत् अजितसेन मदयुक्त समस्त वादी रूपी गजराजों के गण्डस्थलों को विदीर्ण करने वाले वादी रूपी हाथियों के लिये सिंह के समान शोभित होते थे अर्थात् अजितसेन का सम्मान मुकुट-धारी राजा करते थे और अपनी तर्कणा शक्ति से शास्त्रार्थ में सभी वादियों को पराभूत करने के कारण वे वस्तुतः वादीभसिंह थे ।

२. वादीभसिंहो जितवादिसिंहो जीयादसौ वादकलाप्रवीणः ।
निर्माय यो ह्येकमिमं महान्तं ग्रन्थं बुधश्लाघ्यतमो बभूव ।।

–**गद्यचिन्तामणि** की डा० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य कृत संस्कृत टीका **वासन्ती** का प्रारम्भिक श्लोक ६

भावार्थ—वादकला में प्रवीण, वादी रूपी सिंहों को जीतने वाले वह वादीभसिंह जयी हों जिन्होंने इस एक महान ग्रन्थ **(गद्यचिन्तामणि)** की रचना करके बुधजनों की प्रशंसा पाई ।

३. श्रीमद् वादीभसिंहेन गद्यचिन्तामणिः कृतः ।
स्थेयादोडयदेवेन चिरायास्थान भूषणः ।।
स्थेयादोडयदेवेन वादीभहरिणा कृतः ।
गद्यचिन्तामणिर्लोके चिन्तामणिरिवापरः ।।

—**गद्यचिन्तामणि** की कतिपय प्रतियों में अन्त में प्राप्त श्लोक २९६ व २९७

भावार्थ—श्रीमान वादीभसिंह ओडयदैव द्वारा रचित **गद्यचिन्तामणि** चिरकाल तक विद्वद्सभाओं का भूषण बनी रहे। वादी रूपी गजों के लिये सिंह समान ओडयदेव द्वारा रचित **गद्यचिन्तामणि** संसार में दूसरे चिन्तामणि की भांति चिरकाल तक स्थिर रहे।

४. सूरिर्वादीभसिंहोऽसावखिलागमवारिधिः ।
काव्यशास्त्ररहस्यज्ञः क्षमतां स्खलितं मम ।।

—**गद्यचिन्तामणि** की **वासन्ती** टीका में टीकाकार प्रशस्ति का अन्तिम श्लोक

भावार्थ—काव्यशास्त्र के रहस्य को जानने वाले, समस्त आगमों के वारिधि (सागर) वह वादीभसिंह सूरि मेरी भूलों को क्षमा करें।

वादीभसिंह नाम, उपाधि अथवा विशेषण धारण करने वाले अनेक जैन मुनि, आचार्य और विद्वान हुए हैं। जैसा कि ऊपर भी अंकित किया गया है, **वादीभसिंह** का शब्दार्थ है 'वादी रूपी गजों के लिये सिंह'। **अकलंकदेव** (ल० ६२५–६७५ ई०) के लिये 'वादीभसिंह' विशेषण का प्रयोग श्रवणबेलगोल के पास चल्लग्राम के बयिरदेव मन्दिर में शक संवत् १०४७ (११२५ ईस्वी) के लेख में हुआ है। उसी लेख में श्रीमद् अकलंक के मत का अवलम्बन करने वाले और 'षट्तर्कषण्मुख', 'असारसंसारव्यापारपराङ्मुख' विशेषणों से भूषित श्रीपालत्रैविद्यदेव के लिये भी 'वादीभसिंह' विशेषण का प्रयोग किया गया प्रतीत होता है। आचार्य सोमदेव सूरि कृत **यशस्तिलकचम्पू** (९५९ ई०) के टीकाकार श्रुतसागर सूरि ने अपनी

टीका में कवि वादिराज का एक श्लोक उद्धृत करते हुए वादिराज के गुरुभाई और सोमदेव के शिष्य रहे एक 'वादीभसिंह' का उल्लेख किया है। लघुसमन्तभद्र के **अष्टसहस्री टिप्पण** में भी एक वादीभसिंह का उल्लेख है।

ऊपर २, ३ व ४ पर उद्धृत श्लोकों में जिन वादीभसिंह का सादर स्मरण किया गया है, वह संस्कृत **गद्यचिन्तामणि** के रचनाकार हैं। इस ग्रन्थ के आद्य सम्पादक पं० टी० एस० कुष्पुस्वामी, पं० के भुजबलि शास्त्री, पं० कैलाश चन्द्र शास्त्री और डा० पन्नालाल साहित्याचार्य प्रभृति विद्वानों ने ऊपर १ पर उद्धृत श्लोक में सादर उल्लिखित अजितसेन वादीभसिंह का समीकरण **गद्यचिन्तामणि** के कर्ता वादीभसिंह सूरि से किया है। परन्तु पं० नाथूराम प्रेमी इससे सहमत नहीं हैं क्योंकि मुनि मल्लिषेण मलधारिदेव की सल्लेखना की स्मृति और उनकी प्रशस्ति में श्रवणबेलगोल में चन्द्रगिरि पर्वत पर पार्श्वनाथ बस्ति के स्तम्भ पर शक संवत् १०५० (११२८ ई०) के जिस लेख से उक्त श्लोक उद्धृत हैं, उसमें अजितसेन वादीभसिंह की किसी रचना का अथवा उनके काव्य कौशल का कोई संकेत नहीं है। उन्हें स्याद्वाद विद्या को जानने वाला, वाद दिग्गज और व्रतिपति (मुनिराज) ही सूचित किया गया है। संस्कृत में **गद्यचिन्तामणि** और **क्षत्रचूड़ामणि** जैसे अनुपम ग्रन्थों की रचना करने वाले वादीभसिंह की काव्य प्रतिभा का कोई उल्लेख उक्त प्रशस्ति लेख, जिसमें उन पर ४ श्लोक हैं, में न होना विस्मयकारी है तथा अजितसेन वादीभसिंह के उक्त ग्रन्थों के कर्ता होने में शंका उत्पन्न करने वाला है।

ग्रन्थ की कई प्रतियों के अन्त में पाये गये उपर्युक्त ३ पर उद्धृत श्लोक बाद में प्रतिलिपिकारों द्वारा जोड़े गये लगते हैं। तथापि उनके आधार पर कुछ विद्वानों ने ग्रन्थकर्ता का असली नाम 'ओडय देव' और 'वादीभसिंह' को उनकी उपाधि माना है यद्यपि ओडयदेव नाम का उल्लेख अजितसेन वादीभसिंह के साथ उक्त मल्लिषेणप्रशस्ति में नहीं है। डा० पन्नालाल जी द्वारा प्रस्तुत समा-

धान कि अजितसेन उनका मुनि अवस्था का नाम रहा होगा और मुनि हो जाने पर मुनि-पूर्व अवस्था के नाम ओडयदेव का उल्लेख किये जाने का औचित्य नहीं रहा होगा, समीचीन नहीं है। इस सम्बन्ध में **गद्यचिन्तामणि** के प्रथम लम्भ का श्लोक ६ ध्यातव्य है—

श्रीपुष्पसेनमुनिनाथ इति प्रतीतो दिव्यो मनुर्मम सदा हृदि संनिदध्यात्।
यच्छक्तितः प्रकृतिमूढमतिर्जनोऽपि वादीभसिंहमुनिपुङ्गवतामुपैति ।।

अर्थात्, स्वभाव से मन्दबुद्धि मनुष्य भी जिनकी शक्ति से वादी रूपी हाथियों के लिये सिंह समान और श्रेष्ठ मुनि बन जाय वे दिव्य मनु प्रतीत होने वाले श्री पुष्पसेन मुनिराज सदा मेरे (ग्रन्थकार के) हृदय में विराजमान रहें। इस श्लोक से स्पष्ट है कि ग्रन्थकार ने **गद्यचिन्तामणि** की रचना मुनि अवस्था में की थी। इससे उनके गुरु का नाम श्री पुष्पसेन मुनिराज ध्वनित होता है और उन्होंने प्रकारान्तर से अपने केवल वादीभसिंह नाम का उल्लेख किया है। अजितसेन अथवा ओडयदेव नामों का ग्रन्थकार ने उल्लेख नहीं किया है। **गद्यचिन्तामणि** के प्रत्येक लम्भ के अन्त में पुष्पिका वाक्य में भी ग्रन्थकार ने 'इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरि विरचिते' ही लिखा है। हमें तो ग्रन्थकार का वास्तविक नाम वादीभसिंह सूरि ही प्रतीत होता है। प्रतिलिपिकारों द्वारा बाद में जोड़े गये श्लोकों में भी अजितसेन नाम का उल्लेख नहीं है। यदि वह मुनि अजितसेन की रचना रही होती तो प्रतिलिपिकार उसका उल्लेख क्यों छोड़ते ?

जहाँ तक ओडयदेव नाम का सम्बन्ध है, उसके आधार पर पं. के. भुजबलि शास्त्री ने उनका जन्म-स्थान तमिल प्रदेश तथा बी. शेषगिरि राव ने उड़ीसा का गंजाम जिला अनुमानित किया है। उन्होंने यह भी सूचित किया है कि उड़ीसा में राज्य के सरदारों की 'ओडेय' और 'वोडेय' नामक दो जातियां हैं और कदाचित् जन्मतः ओडेय सरदार होने के कारण वादीभसिंह को ओडयदेव कहा गया है।

विवेचित वादीभसिंह सूरि को मुख्यतया इन ३ रचनाओं का श्रेय दिया जाता है—(१) **स्याद्वादसिद्धि**, (२) **क्षत्रचूड़ामणि** और

(३) **गद्यचिन्तामणि**। **स्याद्वादसिद्धि** १४ अधिकारों में अनुष्टुप् छन्द में प्रतिपाद्य विषयों का निरूपण करने वाला न्याय ग्रन्थ है। सम्भव है स्याद्वाद विद्याविद् वादीभसिंह अजितसेन उसके रचयिता रहे हों। पुराणों में उपलब्ध जीवन्धर स्वामी के कथानक को आधार बना कर **क्षत्रचूड़ामणि** और **गद्यचिन्तामणि** की रचना की गई है। **क्षत्रचूड़ामणि** अनुष्टुप् श्लोकबद्ध संस्कृत पद्यकाव्य है जिसमें कथा के साथ-साथ नीति व उपदेश हैं। श्लोक के पूर्वार्ध में कवि कथा कहता चला है और उत्तरार्ध में अर्थान्तरन्यास द्वारा कोई-न-कोई नीति या सुन्दर सूक्ति देता चला है। **गद्यचिन्तामणि** बाणभट्ट की **कादम्बरी** और धनपाल की **तिलकमञ्जरी** की शैली में प्रौढ़ संस्कृत में ११ लम्भों में निबद्ध गद्यकाव्य है। इसकी विशेषताओं को दृष्टिगत कर इसके आद्य सम्पादक कुप्पुस्वामी ने लिखा था, "इसके काव्यपथ में पदों का लालित्य, श्रवणीय शब्दों का संनिवेश, अप्रतिहत वाग्वैखरी, सुगम कथासार, चित्त विस्मित करने वाली कल्पनायें, हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला धर्मोपदेश, धर्म से अविरुद्ध नीतियां और दुष्कर्म के कुफल की प्राप्ति आदि विशिष्ट गुण सुशोभित हैं।"

गद्यचिन्तामणिकार वादीभसिंह सूरि का समय डा० ज्योति प्रसाद जैन ने ग्यारहवीं शती ईस्वी अनुमानित किया है। पं० कैलाश चन्द्र शास्त्री ने आचार्य जिनसेन (लगभग ७७०–८५० ई०) द्वारा **आदि पुराण** में उल्लिखित कवि वादिसिंह और कवि वादिराज (ल० १०२५ ई०) द्वारा **पार्श्वनाथ चरित** में उल्लिखित स्याद्वाद वाणी द्वारा दिङ्नाग का मद ध्वंस करने वाले वादिसिंह के वादीभसिंह होने की सम्भावना व्यक्त की है।

पं० भुजबलि शास्त्री ने **गद्यचिन्तामणिकार** वादीभसिंह का कार्यक्षेत्र कर्नाटक प्रदेश का पोम्बुच्च स्थान सूचित किया है। यह ध्यातव्य है कि **गद्यचिन्तामणि** की अधिकांश हस्तलिखित प्रतियां कन्नड लिपि में ही पाई गई हैं, अतएव उनका कार्यक्षेत्र कर्णाटक प्रदेश रहा हो सकता है।

—रमा कान्त जैन

Some Common Features in Jaina and Buddhist Traditions and Art

—Dr. Jyoti Prasad Jain

In the ancient and mediaeval times, religion had been the most conspicuous and potent force in the development of Indian art, and the credit goes not to Brahmanism alone, but is equally shared by Jainism and Buddhism, the two living representatives of that ancient current of Indian culture, which was known as the Sramana as distinct from the Brahmana and was in its origin purely indigenous, non-Vedic and non-Brahmanical. It denied the authority of the Vedas, was opposed to sacrificial ritualism and the caste hegemony, and laid stress on self-purification through renunciation, self-control and austerity, and was nourished chiefly by the Kshatriyas of eastern Uttar Pradesh and Bihar. It was this Sramana current which mothered and nursed the so-called sister creeds, Jainism and Buddhism.

The Buddhist legends speak of the four, or seven, Buddhas who had lived prior to the appearance of Sakyamuni Gautama the Buddha (6th-5th century B. C.). The Jains claim that twenty-three Tirthankaras, beginning from Rishabhadeva down to Parsvanatha (877-777 B. C.) had flourished, one after the other, before Nirgrantha Jnatriputra Vardhamana Mahavira (599–527 B. C.), the last in the series, revived and reformed the creed of the Tirthankaras and reorganised the four-fold order. Scholars like Rhys Davids have no doubt that "the Jainas have been an organised community all through the history of India from before the rise of Buddhism down to the present time."

There are, as is natural, numerous coincidences and common features in these two religious systems, which are also often reflected in their respective artistic creations Nigantha Nataputta Mahavira, the last exponent of Jainism, and Sakyaputta Siddhartha Gautam, the historical founder of Buddhism, were not only contemporaries, but both of them were Kshatriya prince hailing from eastern India, their lands of birth, Videha and Sakyahbhumi respectively, lying not very far from each other. Both were extremely compassionate and were sorely touched by

the suffering of the worldly beings and the ephemeral character of life, hence each renounced the world, practised austerity, got enlightenment, preached for the well-being of all the beings and finally attained *nirvana*. The principal auspicious events in the life of each of them are enumerated to have been the dream of the mother at the time of the conception, birth and the first bath, renunciation, enlightenment, turning the Wheel of Law, and *nirvana*. Quite analogous to the Buddhist *Jatakas* are the innumerable stories of the previous births of all the Tirthankaras including Mahavira, as also of other Shalaka-purushas (eminent personages) of the Jaina tradition. Both Mahavira and the Buddha used for their sermons the local dialect of the common people, known as the Ardhamagadhi Prakrit with the Jains and the Pali with the Buddhists, and if the canon of the latter has been called the Tripitaka, that of the former is also known as the Gani-pitaka. Significant terms like Jina, Arhat, Buddha, Sambudhha, Swayambuddha, Tathagata, Mukta, Parinivratta, Bhante, Thera, Sravaka, Upasaka, Sramanopasaka, Uposatha, Varshavasa, as also many philosophical terms like Asrava, Samvara, Sila, Samyagdrishti, Mithyadrishti, Vinaya, Veramana, Nirvana and Parinirvana have been almost synonymously used in both the traditions, and the list is not exhaustive. Signs and symbols like Dharmachakra, Triratna, tree, parasol, halo, lotus, swastika, marks of greatness, poses and postures, Yakshas, Yakshis and attendants are usually common to both. It is sometimes difficult to distinguish a dhyani-Buddha image from a lotus-seated Jina image. The images of Tirthankara Parsva generally have a serpent hood over head, and so some Buddha images do; the legend of Dharanendra Naga in case of the former and of Muchakunda Naga in that of the latter, alluding to the protection of the Lord from the elements at Ahicchatra, are very similar. The royal patrons and the audiences of Mahavira and the Buddha were in most cases common, and the places the two teachers visited or where they passed their Chaturmasas or Varshavasas are almost the same, such as Rajagriha, Vaishali, Champa, Nalanda, Sravasti, Varanasi, Kausambi, Saketa, Kampilya, Sankisa, Hastinapur and Mathura. All of them are equally sacred in Jainism as in Buddhism. At Mathura

both the religions flourished equally well, and side by side, at least from the late Maurya period to the end of the Gupta period, and the locality has yielded very rich treasures of art associated with each of them. Then, Siddhartha, the first name of the Buddha, was also the name of Mahavira's father, while Buddha's surname Gautama was the popular surname of Mahavira's chief disciple, Indrabhuti the Ganadhara. Mahavira himself is mentioned in early Buddist literature usually under the name Nigantha Nataputta and is described as one of the six Tirthankas (prominent teachers) of the time; even the first Jaina Tirthankara Rishabha finds mention there. And, the Jain tradition makes out the Buddha as a disciple of a Jain saint of the following of Tirthankara Parsva.

In fact, as Prof. Albrecht Weber averred, "The number and importance of coincidences in the traditions of either sect re their founders is overwhelming." No wonder, the early orientalists like Weber and Lassen, and even the archaeologists, carried away by the preponderance of resemblence, albeit superficial, between Jainism and Buddhism, confused the two systems and sometimes even their artistic remains. It took some time and laborious research work on the part of their successors before it came to be finally established that each of these two religions had an independent origin, existence, development, history and cultural heritage, obviously because there are far deeper and fundamental differences between the two.

But although comparative studies in their philosophies, theory and practice of religion, as also in their literatures, have been undertaken, little seems to have been done on comparative lines in the sphere of art, or of their mutual influence and give and take, if any, which is a desideratum. In several cases their centres existed close to each other in the same locality, the material used and the artizens employed were common, and often the themes and motifs were also common or similar.

It may also be pointed out that the Buddha is known to have specifically enjoined upon his adherants not to worship his body or any part of it, nor make his images after his demise.

(शेष पृष्ठ १०१ पर)

सम्पादकीय

कलिकाल तीर्थंकर

करुणादीप (दि० १५ मई, ९७) में प्रकाशित निम्नलिखित समाचार का अवलोकन करें—

"करगुवां (झांसी)—परम पूज्य मुनि कुञ्जर, समाधि सम्राट **कलिकाल तीर्थंकर**, आचार्य शिरोमणि आदिसागर जी अंकलीकर का ५५वां समाधि दिवस मार्गशीर्ष शुक्ला २, ७ मार्च ९७, को सम्पन्न हुआ.....।"

यह समाचार हमें बड़ा अटपटा लगा। पूज्य आचार्य श्री का समाधि दिवस ७ मार्च, ९७ को मनाया गया या मार्गशीर्ष शु० २ को, यह समाचार से स्पष्ट नहीं होता। आचार्य श्री की समाधि फाल्गुन कृ० १३ (महाशिव रात्रि) दि० ४ मार्च, १९४३ ई० को हुई थी। यह तिथि इस वर्ष ७ मार्च को पड़ी थी, इसलिये उनका समाधि दिवस ७ मार्च को मनाया जाना ठीक है, पर इसके साथ मार्गशीर्ष शु० २ का उल्लेख भ्रामक है, असंगत है।

(पृष्ठ १०० का शेष)

Mahavira or any other Tirthankara never gave such an injunction. Yet, during its heyday from the Sunga to the Pala period, Buddhism produced an enviable wealth of art, mainly initiated under the patronage of foreign races like the Greeks, Parthians, Sakas and Kushanas. Perhaps, Buddhism, with its milder code and prompter adaptability was better suited to appeal to the materialistic and more wordly minded peoples than the austere and puritanical Jainism However, it is presumed on good authority that Arhat Chaityas had been in existence even before the birth of Mahavira and Jina images had begun to be made much before the Buddha images had. The Jain art not only had an earlier beginning, it has also continued to flourish till the present times, and its centres, too, have been more numerous and much more diffused in the Indian sub-continent. It has had a no less richer variety as well. ☼

'कलिकाल तीर्थंकर' के गरिमापूर्ण विरुद के साथ किसी दिगम्बर जैन आचार्य/मुनिराज के विषय में समाज के किसी प्रतिष्ठित साप्ताहिक समाचार पत्र में प्रकाशित समाचार हमें पहली बार पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। हमें पूज्य अंकलीकर जी महाराज के साक्षात दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ तथा हमारी धारणा थी कि उनका उत्तर भारत में विहार नहीं हुआ। पर अब पढ़ने में आ रहा है कि उन्होंने अयोध्या सहित उत्तर भारत के अनेक तीर्थ-क्षेत्रों की यात्रा की थी। सन् १९७५ के पूर्व तो उनके नाम के साथ आचार्य पद जुड़ा पढ़ने-सुनने में भी नहीं आया था। जयपुर से पधारे हमारे एक समाज सेवारत मित्र से चर्चा करने पर उन्होंने हमारी जानकारी बढ़ाते हुए कहा कि स्व० अंकलीकर मुनिराज की बात तो छोड़िये, उन्हें तो चारित्र चक्रवर्ती पूज्य आचार्य शान्ति सागर म० से वरिष्ठ एवं ऊँचा स्थापित/प्रचारित करने के उद्देश्य से उनके शिष्यानुशिष्य उन्हें आचार्य शिरोमणि, समाधि-सम्राट और न जाने किन-किन उपाधियों से अलंकृत घोषित कर रहे हैं, आज भी एक ऐसे पूज्य तपोनिधि आचार्य शिरोमणि विद्यमान हैं जिनका विशाल शिष्य समुदाय तथा सहस्रों की संख्या में भक्त श्रावक एवं विद्वत् जन उन्हें **कलिकाल तीर्थंकर** मानते हैं तथा घोषित करते हैं।

सितम्बर १९९१ में यश प्रकृति के अनन्य धनी, वात्सल्य रत्नाकर पूज्य आचार्य श्री विमल सागर महाराज को उनके ७५वें जन्म दिवस समारोह के सुअवसर पर उनके शिष्य समुदाय तथा भक्त श्रावकों एवं विद्वत् जनों के भारी जमावड़े के बीच **कलिकाल सर्वज्ञ** की उपाधि से अलंकृत किया गया था। धर्म संरक्षिणी महा-सभा के एक प्रमुख नेता तथा समारोह के संयोजक श्रेष्ठी जी के द्वारा इस उपाधि का प्रशस्ति पत्र आचार्य श्री को भेंट करते हुए तथा आचार्य श्री का प्रमुदित मुद्रा के साथ उसे ग्रहण करते हुए दृश्य का फोटो चित्र भी जैन समाचार पत्रों में प्रमुखता के साथ प्रकाशित हुआ था। उस समय हमारी धारणा थी कि "कलिकाल सर्वज्ञ" के दुर्लभ विरुद से अलंकृत होने का सौभाग्य प्राप्त करने वाले

श्री विमल सागर म० पहले और अकेले दिगम्बर जैन आचार्य हैं किन्तु हाल ही में **जैन जगत** (पाक्षिक) की पुरानी फाइल पलटते हुए हमें यह पढ़कर सुखद आश्चर्य हुआ कि इस विरुद का प्रयोग इस शती के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य श्री के लिए भी किया जाता रहा है। पूज्य चा० च० आचार्य श्री शान्ति सागर म० के जयपुर नगर में प्रथम चातुर्मास के प्रसंग पर लिखे गए **जैन जगत** के दि० १ नवम्बर, १९३२ के पृष्ठ २४–२६ पर सम्पादकीय लेख के निम्नलिखित अश दृष्टव्य हैं—

"·····आचार्य श्री पंचम जाति के हैं, तथा उनकी जाति में खुले आम विधवा विवाह का रिवाज चालू है·····तलाक तक की प्रथा प्रचलित है। पंचम जाति के पाटिलों में भी विधवा विवाह हुए हैं और होते हैं। इतना होते हुए भी शान्ति सागर जी शूद्रों के हाथ के जल का त्याग तथा फलां के हाथ का आहार लेंगे और फलां का नहीं, इस प्रकार का आडम्बर करते हैं·····इस संघ के साधुओं और त्यागियों को ख्याति लाभ पूजा की बहुत इच्छा रहती है····· शान्ति सागर जी का शास्त्र ज्ञान तो बहुत ही कम मालूम होता है। पर इस पर भी तुर्रा यह कि ये लोग अपने आपको बहुत ऊँचे दर्जे का विद्वान और शास्त्रज्ञ दिखलाते हैं और इनके साधक लोग **इन्हें कलिकाल सर्वज्ञ कहने** की धृष्टता करते हैं। यदि जैन समाज के हितेच्छु लोग इस प्रकार गुरुडम के प्रवाह में न बहकर परीक्षा प्रधानी बन कर उचित अनुचित का विचार कर साधुओं को शान्ति के साथ उनके गुण-दोष समझाने की चिन्ता रखें तो क्या ही अच्छा हो। ऐसा होने से जैन साधुओं की निर्मल कीर्ति ज्यों की त्यों बनी रह सकेगी और आजकल के जैन साधु नामधारी लोगों के कृत्यों के कारण इस पवित्र मार्ग के नाम पर बट्टा न लगेगा·····।"

हमें लगता है कि **जैन जगत** के विद्वान सम्पादक जी* ने अपने

---

* विद्वान सम्पादक पं० दरबारी लाल जैन न्यायतीर्थ थे जो अब 'सत्यभक्त' के नाम से विख्यात हैं। उस समय के मनीषी विद्वान पं० नाथू राम प्रेमी और जुगल किशोर मुख्तार **जैन जगत** के लेखकों में थे।

उपरोक्त सम्पादकीय में पूज्य आचार्य श्री शान्ति सागर जी महाराज व उनके मुनि संघ की अपने सुधारवादी दृष्टिकोण के अतिरेक में कुछ अधिक ही कटु आलोचना कर दी। सैकड़ों वर्षों के अन्तराल के बाद उत्तर भारत में दर्शन दे रहे दिगम्बर जैन आचार्य एवं मुनि संघ में उन्होंने कदाचित् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य, उमा स्वामी, भट्टाकलंक देव जैसे प्राचीन ज्योतिर्धर आचार्यों एवं मुनिराजों की छवि के दर्शनों की अपेक्षा की थी तथा उनकी कसौटी पर इस मुनि संघ को परखना चाहा था पर कालजन्य परिवर्तनों के कारण उस समाचारी का कठोरता पूर्वक पालन करना अब सम्भव कहां रहा था। उन्होंने आचार्य श्री के अल्प शास्त्रज्ञ होते हुए भी उन्हें 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहने वालों को फटकार लगाई है पर कदाचित् उन्हें इसका ध्यान नहीं रहा कि केवलज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है तथा मति-श्रुति परोक्ष ज्ञान है और केवलज्ञान प्राप्ति की पात्रता के लिए मति-श्रुति ज्ञान की पूर्णता आवश्यक नहीं है तथा इसीलिये केवलज्ञानियों का एक भेद मूक-केवलियों का भी होता है जो बहु-श्रुत नहीं होते। किन्तु यह आलोचना दिगम्बर जैन साधु की निर्मल छवि जन मानस में अक्षुण्ण बनाए रखने की सम्पादक जी की चिन्ता को तो उजागर करती ही है। बहरहाल पू० आचार्य शान्ति सागर जी व उनके संघ का उपकार विस्मृत नहीं किया जा सकता जिनके अनुग्रह से आज इतनी बड़ी संख्या में दिगम्बर जैन साधुओं के दर्शन सुलभ हो गये हैं।

पू० आचार्य श्री विमल सागर म० के "कलिकाल सर्वज्ञ" उपाधि अलंकरण समाचार की विवेचना करते हुए हमने **शोधादर्श** १५ (नवम्बर १९९१) के पृष्ठ १९–२३ पर अपने सम्पादकीय लेख में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया था कि जैन दर्शन-संस्कृति में 'केवलज्ञानी' व 'सर्वज्ञ' पर्यायवाची शब्द माने गये हैं तथा केवलज्ञानी ही सर्वज्ञ हो सकता है, अन्य कोई नहीं; कि कृत, त्रेता, द्वापर व कलियुग के रूप में काल विभाजन की अवधारणा ब्राह्मण संस्कृति की देन है तथा उक्त परम्परा के अनुसार वर्तमान में प्रवर्तनशील कलियुग का प्रारम्भ महाभारत के कुछ ही वर्षों के उपरान्त महा-

राजा परीक्षित के राज्यारोहण के समय से माना जाता है, जबकि जैन परम्परा में समय को १० कोड़ा-कोड़ी सागर वर्षों के दो महाकाल खण्डों—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी—में विभाजित किया गया है; पुनः प्रत्येक महाकाल खण्ड को छह आरों या कालों में विभक्त किया गया है। इनमें से केवल चौथे काल में ही (जिसकी अवधि ४२००० वर्ष न्यून एक कोड़ा-कोड़ी सागर वर्ष है) भरत क्षेत्र में धर्म-चक्र के प्रवर्तक २४ महान् तीर्थंकरों का प्रादुर्भाव होता है, अन्य केवलज्ञानी-सर्वज्ञ भी चौथे काल में ही जन्म लेते हैं। इस नियम का एक मात्र अपवाद वर्तमान अवसर्पिणी महाकाल खण्ड के तीसरे काल के अन्तिम भाग में आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव तथा उनके धर्म शासन के कतिपय केवलज्ञानियों का जन्म लेना है। इस अपवाद को वर्तमान हुण्डावसर्पिणी काल का एक अछेरा कहा गया है। जैन परम्परा के अनुसार चतुर्थकाल के अन्तिम भाग में जन्मे अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी तथा उनके धर्म शासन में मोक्ष गए अन्तिम केवली जम्बू-स्वामी पर्यन्त सभी केवलज्ञानी-सर्वज्ञों का जन्म चतुर्थ काल में ही हुआ था तथा अब इस भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी महाकाल खण्ड के चौथे काल के प्रारम्भ होने के बाद ही तीर्थंकरों व अन्य केवल ज्ञानी-सर्वज्ञों का प्रादुर्भाव होगा।

ब्राह्मण संस्कृति की काल विभाजन की चतुर्युगीन अवधारणा को जैन अवधारणा में समन्वित करें तो त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के कुछ अंश का समावेश चतुर्थ काल में हो जाता है तथा इस प्रकार भगवान नेमिनाथ द्वापर के तथा **भगवान पार्श्वनाथ व भगवान महावीर स्वामी कलिकाल के तीर्थंकर थे तथा २३वें-२४वें तीर्थंकरों** के धर्म शासन में मोक्ष गये **अन्तिम केवली जम्बू स्वामी पर्यन्त सभी केवली कलिकाल सर्वज्ञ थे।**

अब स्व० श्री अंकलीकर मुनिराज को या वर्तमान के जिन आचार्य शिरोमणि को उनके शिष्य या भक्त जन "कलिकाल तीर्थंकर" के विरुद से अलंकृत कर अपने को धन्य मान रहे हैं, वे

(शेष पृष्ठ १०९ पर)

भगवान महावीर

—श्री त्रिभुवन प्रसाद तिवारी*

विचारों की स्वतन्त्रता और उनकी अभिव्यक्ति हजारों साल से भारतीय चेतना का मूल मन्त्र रहे हैं। सागर की गहराईयों, हिमालय की ऊचाईयों और पवित्र नदियों के विशाल वक्षस्थल ने हमारे मानस को विशाल बनाया है। "सत्यं शिवं सुन्दरम्" की खोज और अनुभूति उन्मुक्त हृदय व मस्तिष्क ही कर सकते हैं। वेदों के बारे में अमरीकी विचारक हेनरी डेविड थोरो कहते हैं :—

"जब-जब मैं वेदों के किसी भाग को पढ़ता हूँ तो ऐसा लगता है कि कोई अलौकिक और अज्ञात प्रकाश मुझे आलोकित करता है। वेदों के महान उपदेशों में कोई स्पर्श संकीर्णता का नहीं है। यह सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्व-राष्ट्रीय हैं और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करने का राजपथ हैं। जब मैं वेदों का अवगाहन करता हूँ तो ऐसा लगता है जैसे मैं ग्रीष्म रात्रि के महिमामण्डित स्वर्गों के तले हूँ।"

जैन दर्शन भी अति प्राचीन है। ऋषभ देव जी, आदि तीर्थंकर, श्री रामचन्द्र जी के पूर्वज थे। श्री महावीर, २४वें तीर्थंकर, का जन्म भी ५९९ ईस्वी पूर्व में इक्ष्वाकु वंश में हुआ। २९ वर्ष की आयु में, अर्थात् ५७० ई० पू० में, उन्होंने गृह त्याग किया; और १२ वर्ष की तपस्या के बाद ५५७ ई० पू० में उन्हें सत्य बोध हुआ। लगभग ३० साल तक जैन धर्म का प्रचार किया और ५२७ ई० पू० में उनका निर्वाण हुआ।

तत्त्वार्थ सूत्र और डा० ज्योति प्रसाद जैन द्वारा लिखित **भगवान महावीर** को पढ़ने का अवसर मिला। बहुत लाभान्वित हुआ। महावीर जयन्ती के अवसर पर आयोजित अनेक समारोहों में

---

* २७-४-१९९७ को गांधी भवन, लखनऊ, में गांधी स्मारक निधि और जैन मिलन लखनऊ के संयुक्त तत्त्वावधान में महावीर जयन्ति के उपलक्ष में आयोजित सभा में दी गई वार्ता के सार-भूत अंश।

भगवान महावीर के महान उपदेशों एवं आदर्शों को स्मरण किया जाता है।

जैन दर्शन में 'नयवाद' को स्वीकार किया गया, जिसके अर्थ हैं कि विविध दृष्टिकोणों को स्वीकार करके उनका समन्वय करना। इसे अपेक्षावाद भी कहते हैं। पर कुछ मूल मान्यताओं में कोई समायोजन नहीं किया गया। उदाहरणार्थ, जैन दर्शन ईश्वर को जगत् का कर्त्ता नहीं मानता। वस्तुपरक न होने के कारण ईश्वर को कल्पित माना गया है। प्रकृति की पूर्ण सत्ता को आधार माना गया है। भौतिक जगत का स्थायी अस्तित्व मान्य है। व्यक्ति की उत्पत्ति अव्यक्त से नहीं हो सकती। विभिन्न पदार्थ अपनी ही प्रक्रिया से उत्पत्ति, व्यय व ध्रौव्य को प्राप्त होते हैं।

जगत में सात तत्त्व हैं। यह दो भागों में हैं : जीव व अजीव। अजीव में पाँच वर्ग हैं : पुद्गल, धर्म (गति), अधर्म (स्थिति), आकाश और काल।

जीव, या उच्च स्तर पर आत्मा, में चेतनता है। यह असंख्य हैं और स्वयं में पूर्ण और अनन्त हैं और मोक्ष होने पर भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। आत्मा में परमात्मा अर्थात् परम विशुद्धि बनने के पद को प्राप्त करने की क्षमता है। मोह के क्षय से और सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चारित्र के साधन से मोक्ष प्राप्त होता है। विजातीय द्रव्य से सम्बन्ध छूट कर आत्मा का निर्मल आत्मस्वरूप में स्थित हो जाना मोक्ष है। कर्मों से मुक्त होते ही जीव ऊपर लोक के अन्त तक गति करता है और फिर वहाँ ठहर जाता है। मुक्ति मनुष्य गति से ही होती है।

कर्म के सिद्धान्त पर पूरी आस्था है। इसमें कारण-कार्य का नियम काम करता है। कर्मों के फल के अनुसार जीव को जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमना पड़ता है। अतः पुनर्जन्म को मान्यता है। इससे आत्मा की निरन्तरता व अमरता भी सिद्ध होती है। जीव अपना स्वयं निर्माता है। वह अपने को जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त कर सकता है। एक तरफ वर्तमान जीवन है, दूसरी तरफ मोक्ष का

लक्ष्य, अतः सात तत्त्वों पर ध्यान आवश्यक है। ये सात तत्त्व जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, हैं। अन्तिम लक्ष्य या तत्त्व मोक्ष है।

अहिंसा को भगवान महावीर ने बहुत महत्त्व दिया। इसे परम-ब्रह्म भी कहा गया है। जीव-दया मानवता की पहचान है। सह-अस्तित्व इसी सिद्धांत पर आश्रित है। अहिंसा परम धर्म है; और जहाँ अहिंसा है वहीं विजय है।

जहां तक मैं समझ सका हूँ, **श्रीमद्भगवत गीता** में भी विभिन्न विचारों का समन्वय किया गया है। अगर पारिभाषिक जटिलताओं को अलग रख कर देखा जाय तो आत्मा की अमरता, कर्मों की प्रधानता, पुनर्जन्म और उसके हेतु, समत्व का महत्त्व, अहिंसा आदि सद्गुण, मोक्ष, इत्यादि विषयों में दोनों दर्शनों में बहुत अनुकूलता है। सनातन दर्शन के अनुसार आत्मा अजर-अमर है। कर्म अपरिहार्य है। कोई भी मनुष्य एक क्षण भी बिना कर्म के नहीं रह सकता। उठना-बैठना भी तो क्रिया हैं। राग और द्वेष बन्धन के कारण हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर नर्क की तरफ ले जाते हैं। सत्य, अहिंसा, अभय, अन्तःकरण की शुद्धता, ज्ञान, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, क्रोध-हीनता, त्याग, शांति, निन्दा न करना, दया, अलोलुपता, कोमलता, लोक और शास्त्र से विरुद्ध आचरण में लज्जा, अचपलता, तेज, क्षमा, धैर्य, शुद्धता, अजातशत्रुता, पूज्यता के अभिमान का अभाव—ये सब दैवी गुण हैं। ये गुण देवत्व की ओर ले जाते हैं।

पाप और पुण्य दोनों पुनर्जन्म के हेतु हैं, अतः समत्व बुद्धि पर बल दिया गया ताकि कर्मों का पलड़ा सम रहे, विषम न हो। जीवन-मुक्त और मोक्ष, दोनों स्थितियों का निरूपण किया गया।

व्यक्ति, समाज व राष्ट्र का हित इसमें है कि अनुकूलता, समन्वय, बन्धुत्व और सदाचार पर ध्यान केन्द्रित रहे। विज्ञान की उपलब्धियों से भी लाभान्वित होना है। न्यूटन के पूर्ण भौतिकवाद के आगे भौतिक विज्ञान बढ़ा है। आइन्स्टाईन ने पहली बार यह

सिद्ध किया कि भौतिक दृश्य के संवीक्षण में संवीक्षक का भी स्थान है। अगर संवीक्षक की गति प्रकाश की गति के बराबर पहुँचे तो दूरी नापने वाला 'स्केल' सिकुड़ेगा और समय को इंगित करने वाली घड़ी धीमी पड़ जायेगी। इस तरह से न्यूटन का यह दावा कि भौतिक जगत में दूरी व समय के अपरिवर्तनीय मापक हैं, अधूरा साबित हुआ। यह क्रान्तिकारी स्थापना हुई कि बिना संवीक्षक के तथ्यपरक भौतिक असलियत जैसी कोई वस्तु नहीं है।

एक दूसरी प्रगतिशील वैज्ञानिक धारा 'Quantum Theory' यह दर्शाती है कि सबसे आधारिक स्तर पर भौतिक वास्तविकता की उत्पत्ति में संवीक्षक एक महत्वपूर्ण भाग है। इसके यह अर्थ हुए कि संवीक्षक से स्वतन्त्र वास्तविकता जैसी कोई वस्तु नहीं है। इन स्थापनाओं में प्रकृति और पुरुष, दृष्टा एवं दृश्य के सम्बन्धों की झलक भी मिलती है। विज्ञान और दर्शन निकट आ रहे हैं। ★

(पृष्ठ १०५ का शेष)

क्या उन्हें भगवान पार्श्वनाथ व भगवान महावीर स्वामी की पंक्ति में खड़ा करने का दुस्साहस नहीं कर रहे हैं? अब जो कलिकाल तीर्थंकर होगा वह २५वां तीर्थंकर होगा जिसका भगवान महावीर के धर्म शासन में कोई स्थान नहीं है क्योंकि प्राचीन आचार्यों ने २५वें तीर्थंकर की सम्भावना को सर्वथा नकार दिया है। भगवान महावीर स्वामी के उपरान्त किसी महान् आचार्य को भी तीर्थंकर कहना या मानना तीर्थंकर का अवर्णवाद है।

हमें तो किसी पूज्य आचार्य या आर्यिका माता के पदनाम के साथ 'शिरोमणि' की उपाधि लगाना या उन्हें सर्वोच्च घोषित करना भी बड़ा विचित्र लगता है। क्या साधुओं में आचार्य, उपाध्याय पदों के अतिरिक्त ऊँच-नीच का भेद किया जा सकता है? क्या किसी को शिरोमणि या सर्वोच्च प्रचारित करना उसी पद के धारी अन्य साधुओं की अवमानना नहीं है?—सुधि जनों को विचार करना चाहिए।

—अजित प्रसाद जैन

आडम्बर में जकड़ा हुआ धर्म

—आचार्य राजकुमार जैन

आजकल धर्म आडम्बरों में जकड़ता जा रहा है। समाज की ओर से समाज के नेताओं के द्वारा कोई भी धार्मिक आयोजन किया जाय उसमें प्रदर्शन, आडम्बर और स्वयं को आगे रखकर अपनी अहमियत प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति ने आत्म-कल्याण और धार्मिक-भावना को तो गौण बना दिया और आत्म-श्लाघा तथा आत्म-प्रदर्शन को मुख्य। यह प्रवृत्ति केवल समाज के अग्रणी लोगों और नेताओं तक ही सीमित नहीं है, अपितु आत्म-कल्याण का उपदेश देने वाले साधु जन और उस उपदेश को सुनने वाले श्रावक गण भी इसमें सहभागी हैं।

जैन धर्म के प्रचार और प्रसार के नाम पर आज जितने भी आयोजन हो रहे हैं उनमें बड़े-बड़े उपदेश दिये जाते हैं, किन्तु यह नहीं देखा जाता कि उन आयोजनों में ही न जाने कितनी जीव हिंसा हो रही है? एक स्थान पर जन समुदाय या भीड़ इकट्ठी होना स्वयं अपने आप में हिंसा का कारण है क्योंकि जहाँ भीड़ इकट्ठी होगी वहाँ असंख्य क्षुद्र जीवों-प्राणियों का मरना अवश्यम्भावी है। अतः समाज के ठेकेदार धार्मिक आयोजन और प्रदर्शन कर स्वयं हिंसा की सामग्री एकत्र करते हैं और उसमें सहभागी बनाते हैं पूजनीय साधुओं और उनके प्रति अंध श्रद्धा भाव रखने वाले हमारे श्रावकों को।

आज हमारे समाज के दो मुख्य आधार स्तम्भ हैं—एक साधु और दूसरा श्रावक। हमारा सम्पूर्ण समाज और जैन धर्म इन्हीं दोनों के इर्द-गिर्द है। साधु के बिना श्रावक की गति नहीं है और श्रावक के बिना साधु की। जैनधर्म के अनुसार साधु का मुख्य कार्य है आत्मोत्थान या आत्मा का विकास करना, राग-द्वेष एवं अह भाव से स्वयं को मुक्त रखना तथा सामाजिक प्रपंचों, आडम्बरों और प्रदर्शनों से स्वयं को दूर रखना। श्रावक का कार्य है श्रद्धा और भक्ति भाव पूर्वक धर्माचरण करना, साधुओं के प्रति श्रद्धा और भक्ति

रखना तथा धर्म का प्रचार-प्रसार करना। इसके विपरीत आजकल साधुजन सामाजिक और धार्मिक आयोजनों में सम्मिलित होते हैं तथा वहाँ मंचासीन होकर श्रावकों को आत्मोद्धार और आत्मोत्थान का उपदेश देते हैं और उन्हें आत्मा के विकास का पाठ पढ़ाते हैं।

वस्तुतः साधु निःस्पृही होता है, होना भी चाहिये, क्योंकि जयघोष एक प्रकार की लालसा का प्रतीक है जिसकी अन्ततः परिणति परिग्रह में है जो भौतिक होता है और जिससे साधु को यथाशक्य बचना चाहिए तथा समाज का भी दायित्व है कि वह इस भौतिक लालसा जन्य परिग्रह से साधु को मुक्त रखे, किन्तु दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हो पा रहा है।

निःसन्देह आजकल साधुओं की सत्प्रेरणा से कतिपय ज्वलन्त विषयों पर संगोष्ठियां या परिसंवाद आयोजित किये जा रहे हैं जिनकी सफलता और सार्थकता को बढ़ा-चढ़ा कर प्रचारित किया जाता है। एक मायने में उन्हें सफल मान भी लिया जाता है। उनमें एक ओर जहां साधुओं के जयघोष का ईंधन प्रज्वलित किया जाता है, वहीं दूसरी ओर संगोष्ठी में भाग लेने वाले विद्वज्जन साधु-सान्निध्य में अपने प्रति किये जाने वाले स्वागत-सत्कार और माल्यार्पण से गदगद हो दुगने उत्साह से जयघोष करने लगते हैं। संगोष्ठी या परिसंवाद का आयोजन निश्चय ही किसी विषय के निष्कर्ष पर पहुंचने की एक सार्थक प्रक्रिया है, बशर्ते सीधे-सीधे विषय-वस्तु की सार्थक चर्चा की जाए और उसे चाटुकारिता की परिधि से दूर रखा जाए। किन्तु ऐसा हो नहीं पा रहा है। इस सम्बन्ध में डा० नेमीचन्द जैन की निम्नलिखित टिप्पणी एकदम सटीक प्रतीत होती है—

"जयघोष ऐसी हथकड़ियां हैं जो किसी भी भोले-भाले साधु को अनजान में कैद कर लेती हैं। एक बार कैद साधु को फिर ता-जिन्दगी कैद भोगनी पड़ती है। श्रावक वर्ग अपने स्वार्थ के लिए हथकडियां डालता है और फिर चाबी गुमा बैठता है। हथकड़ियां खोलने के लिये 'मास्टर की' यद्यपि साधु के पास प्रतिक्षण रहती

है, किन्तु एक तो उसे इसका बोध नहीं होता, दूसरे वह उसका उपयोग जान बूझ कर टाल जाता है।"

किसी भी धार्मिक या सामाजिक आयोजन या कार्यक्रम की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। किन्तु उसकी सफलता और सार्थकता तब ही मानी जाय जब उसका सुपरिणाम सामने आए। केवल भीड़ इकट्ठा हो जाना और उस भीड़ द्वारा तालियां पीटा जाना तक को ही आयोजन की सफलता की कसौटी नहीं माना जा सकता। जब तक आयोजन का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो तथा आयोजकों और श्रोताओं के अन्तःकरण का परिसंस्कार नहीं हो, किसी भी प्रकार का आयोजन सफल या सार्थक नहीं माना जा सकता। यहाँ पर मैं डा० नेमीचन्द जैन की निम्नलिखित पंक्तियां भी सन्दर्भित करना चाहूँगा—"किसी भी संगोष्ठी में सिर्फ किसी विचार या विचार-विमर्श का ही जयघोष हो सकता है। उसके सदियों से विकसित ढाँचे में जयघोषों और चापलूसियों, रिश्तेदारियों और व्यक्तिगत खुदगर्जियों के लिए कोई हाशिया नहीं है। यदि कोई संगोष्ठी या परिसंवाद के सुनियोजित ढाँचे को विकृत या संदूषित करता है तो वह इतिहास के साथ कपट करता है। अतः समाज की स्वाभिमानी मनीषा को उसका विरोध या समाधान करना चाहिये"

समाज का एक बड़ा वर्ग आज अहं के विकार से ग्रसित है। उसी अहं की संतुष्टि के लिए वह बड़े-बड़े आडम्बर और आयोजन कर उसमें समाज को एकत्र करता है। सम्भवतः यही कारण है कि जैनधर्म आज आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाला धर्म न होकर मात्र सामाजिक धर्म बन कर रह गया है जिसका क्षेत्र व्यापक न होकर अत्यन्त सीमित हो गया है, यद्यपि हम सब जानते हैं कि जैनधर्म में प्रतिपादित नियमों का पालन किए बिना आत्म कल्याण कर पाना या मुक्ति पाना सम्भव नहीं है। धर्म के प्रति आस्थावान या निष्ठावान होने का आशय मात्र इतना नहीं है कि कोई कितने धार्मिक आयोजनों में सम्मिलित होता है, कितनी बार मन्दिर जाता है या कितनी बार जय-जयकार करता है। अपितु दृढ़ आस्थावान्

वह भव्य जीव है जो स्व-पर को पहचानने का प्रयत्न करता है। स्व-पर को पहचानने का प्रयत्न केवल वह कर सकता है जो अपनी आत्मा का विकास या उत्थान करना चाहता है। वह शरीर में या बाह्य आडम्बरों या प्रदर्शनों में नहीं उलझता है। सभी आडम्बरों और प्रदर्शनों से दूर रह कर केवल स्व में रमण और विचरण करता है। आडम्बर और प्रदर्शनों से केवल तब ही दूर रहा जा सकता है जब उसके अन्तःकरण में राग-द्वेष की तीव्रता अल्प हो और धीरे-धीरे वह अल्पतर होती जाय। इससे अन्तःकरण में मूर्च्छाभाव और परिग्रह वृत्ति को पनपने का मौका नहीं मिलता और वह भव्य जीव आत्म कल्याण के सोपान पर आरूढ़ होकर धर्म के प्रति आस्थावान्, श्रद्धावान् और भक्तिभाव युक्त होता है। दृढ़ आस्था एवं श्रद्धा और सच्ची भक्ति भी ऐसी हो जो उसके अन्तर्मन को छू सके और उसे निर्मल बना दे।

किन्तु, आज वातावरण और परिस्थितियां ऐसी नहीं हैं। आज हमारे सामने जो कुछ भी घटित हो रहा है, यदि उसे ही आधार माना जाय तो स्थिति उत्साहजनक नहीं मानी जा सकती क्योंकि आडम्बर की जिस विकृति ने समाज में अपनी जगह बनाई है और उसने धर्माचरण में जो विकार उत्पन्न किए हैं उससे मनुष्य धर्म से दूर होता जा रहा है। यदि समय रहते इसका समुचित उपचार नहीं किया गया तो भविष्य में इसे सुधार पाना सम्भव नहीं होगा। काल के प्रभाव से समाज में आई विकृति के कारण आज धार्मिक क्रियायें, शास्त्र प्रवचन और साधु जन अपनी प्रासंगिकता खोते जा रहे हैं। कहीं भी इनका सही प्रभाव नहीं पड़ रहा है, यद्यपि बाह्य रूप से आज सर्वत्र धर्म का बोलबाला है। धार्मिक जुलूस निकाले जा रहे हैं, उनमें भीड़ भी बहुत इकट्ठी हो रही है, पंचकल्याणक, गजरथ आदि धार्मिक आयोजनों की भरमार है, उनमें साधुजनों की उपस्थिति भीड़ एकत्र करने के लिए पर्याप्त है और समाज सेवी संस्थाएं भी बढ़-चढ़ कर भाग ले रही हैं, प्रचार भी खूब हो रहा है और रुपया भी पानी की तरह बहाया जा रहा

है। इतना सब होते हुए भी न तो कहीं सहजता है, न स्वाभाविकता है, न मानसिक बदलाव है और न ही आध्यात्मिक धरातल है जहां मनुष्य में सहज, स्वाभाविक और आध्यात्मिक गुणों का विकास हो सके।

वास्तव में यदि देखा जाय तो आज सर्वत्र बोलबाला है अवमूल्यन का – सामाजिक अवमूल्यन, धार्मिक अवमूल्यन, नैतिक अवमूल्यन, मानसिक अवमूल्यन, वैचारिक अवमूल्यन और बौद्धिक अवमूल्यन। इसी का परिणाम है कि आज समाज में दलबन्दी और साधुओं में खेमाबन्दी को प्रोत्साहन मिला है। साथ ही संस्थाओं में विभिन्न पदों को पाने की होड़ लगी है तो धर्मायतनों में अधिकारों की लड़ाई छिड़ी हुई है। पद और अधिकारों की तृष्णा ने लोगों में जो वैमनस्य, ईर्ष्या और द्वेष के बीज बोए हैं उससे सामाजिक विषमता को पनपने का पर्याप्त अवसर मिला है। बड़ी-बड़ी धर्म सभाओं और सम्मेलनों में धर्म को आत्मसात करने, धर्माचरण करने और महापुरुषों के अनुकरणीय आदर्शों को अपनाने की बात की जाती है, जनता को उपदेश दिया जाता है, किन्तु स्वयं का आचरण उससे ठीक विपरीत होता है। आज धार्मिक आयोजनों और धर्मसभाओं में अन्यायोपार्जित द्रव्य का जो भौंड़ा प्रदर्शन किया जाता है और उसे जिस प्रकार सफलता का जामा पहनाया जाता है वह आडम्बर और दिखावा की पराकाष्ठा है। आज कथनी और करनी में अंतर हमारे जीवन का अनिवार्य अंग बन गया है। बात करते हैं सिद्धांतों की और अपने विपरीत आचरण के द्वारा उन्हीं सिद्धांतों की धज्जियां उड़ाई जाती हैं।

अन्तःकरण की गहराइयों में उतर जाने वाला धर्म आज जीवन के दस हजारवें अंश को भी नहीं छू पा रहा है। हमारी कुत्सित मनोःभावनाओं ने धर्म को इस प्रकार बाँट दिया है मानों वह हमारी बपौती है, दूसरे का उस पर कोई अधिकार नहीं है। जब साधु ही गुट बाजी में फंस गये हैं तो उनकी शिष्य मण्डली भी

(शेष पृष्ठ ११५ पर)

ग्यारसपुर के दिगम्बर जैन मन्दिर

—श्री गुलाब चन्द्र जैन

मध्य प्रदेश में विदिशा—सागर मार्ग पर विदिशा से ३४ किलो-मीटर पर स्थित ग्यारसपुर ग्राम में विंध्यपर्वतमाला के दक्षिणी छोर पर मालादेवी मन्दिर निर्मित है और वज्रमठ ग्राम से ४०० मीटर दूर, पर्वत के समीप समतल भूमि पर, वज्रमठ मन्दिर स्थित है।

मालादेवी मन्दिर

पर्वत शिखर पर निर्मित होने के कारण मालादेवी मन्दिर काफी दूरी से दिखाई देता है। मालादेवी मन्दिर के नीचे नील हरितजल से परिपूर्ण जलाशय एवं हरी-भरी घाटी का दृश्य भी अत्यन्त नयनाभिराम है। वर्षा ऋतु में जल भर जाने पर पूर्वीय घाटी का दृश्य अत्यन्त आर्कषक हो जाता है। यह मन्दिर एक पर्वतीय ढाल पर स्थित है। मन्दिर की सुरक्षा की दृष्टि से इसके दक्षिण की ओर नीचे से ऊपर तक एक सुदृढ़ दीवार निर्मित है। पहाड़ी को काट कर इस मन्दिर के निर्माण के लिए एक विस्तृत भूभाग को समतल कर, सन्तुलित एवं शास्त्रीय मानदण्डों के आधार पर इसकी रचना की गई है। प्रवेश द्वार, सभा मण्डप एवं गर्भगृह इसके प्रमुख भाग हैं। गर्भगृह के ऊपर अतिसूक्ष्म एवं मनोहर कला-

---

(पृष्ठ ११४ का शेष)

गुटबाजी का शिकार हुये बिना कैसे रह सकती है? उन्होंने न केवल शास्त्रों को बांट दिया है, अपितु आगम के मूल शब्दों के साथ भी छेड़खानी शुरू कर दी है। ऐसे में कहाँ जायेंगे हम और कहां जायेगा हमारा धर्म? प्राणि मात्र और जीव मात्र के कल्याण और आत्म-स्वातन्त्र्य की बात करने वाला हमारा धर्म क्या संकीर्णता, आडम्बर और प्रदर्शन की बेड़ियों में नहीं जकड़ गया है और ऐसा करने में क्या हमारी भी अहं भूमिका नहीं है?—सोचें और विचार करें। ★

कृतियों से पूर्ण एक उत्तुंग शिखर है। सभा मण्डप की छत अष्ट-कोणाकार, ऊँची एवं नक्काशीदार है। गर्भगृह के चारो ओर प्रदक्षिणापथ है। सभा मण्डप एवं प्रदक्षिणापथ में दोनों ओर दो-दो विशाल एवं कला पूर्ण गवाक्ष हैं जो मन्दिर के अन्तर्मार्ग को पर्याप्त प्रकाश प्रदान करते हैं।

नागर शैली में निर्मित यह मन्दिर प्रतिहार स्थापत्य एवं शिल्प कला का एक बेजोड़ नमूना है। नवमीं-दशवीं शताब्दी में खजुराहो के मन्दिरों की तरह इस मन्दिर की शिल्पकला पूर्ण विकसित है। मन्दिर की पीठ सुदृढ़ एवं अलंकरणों से युक्त है। जंघा भाग में कक्षासन व देव कोष्ठ निर्मित हैं। पर्वत से सटकर बने इस मन्दिर में, पर्वत का कुछ भाग मन्दिर के भीतर तक प्रविष्ट होकर उसे दृढ़ता प्रदान करता है। इसकी जगती का निर्माण भी शिलाओं को काटकर किया गया है। मन्दिर का मुंख पूर्व दिशा की ओर है। मुखमण्डप, महामण्डप, अन्तराल, गर्भगृह एवं प्रदक्षिणापथ युक्त यह मन्दिर पंचायतन शैली में निर्मित है। मन्दिर की बाह्य भित्तियों में उत्तर व दक्षिण में दो-दो विशाल एवं कला पूर्ण गवाक्ष निर्मित हैं। इनसे बाह्यभित्तियों का सौन्दर्य भी अत्यन्त दर्शनीय हो गया है।

क्रमशः उन्नत होती गई इस मन्दिर की छत के कोण स्तूपाकार हैं। मन्दिर का शिखर भी पंचरत्न प्रकार का है। वैसे इसकी आकृति त्रिभुजाकार-सी प्रतीत होती है। ऊपर चारो ओर आठ शिखरिकाएं बनी हुई हैं। शिखर की चोटी पर आमलक है। आम-लक पर चन्द्रिका है व इसके ऊपर लघु आमलक है। सबसे ऊपर कलश व बीजपूरक हैं। शिखर मूल की दक्षिण दिशा में निर्मित रथिका में गरूडासीन व चतुर्भुजी चक्रेश्वरी देवी की प्रतिमा आसीन है। देवी के हाथों में पाश, बज्र तथा चक्र हैं तथा दोनों पार्श्वों में परिचारिकायें अंकित हैं। इसके ठीक बाईं ओर की रथिका में पद्मासनस्थ तीर्थंकर प्रतिमा स्थापित है। दाहिनी ओर शिशु सहित बैठी हुई अम्बिका देवी की मूर्ति है। उत्तर दिशा की रथिकाओं में

यक्षी चक्रेश्वरी अपनी परिचारिकाओं सहित अंकित है। यहीं एक और पद्मासनस्थ तीर्थंकर प्रतिमा है व ललितासन में बैठी यक्षी अम्बिका की प्रतिमा है।

मन्दिर का वाह्य मुखमण्डप चार स्तम्भों पर आधारित है। इसका अष्टकोणीय वितान नागर शैली में निर्मित है जिनमें कोल व गजतालु के अलंकरण अंकित हैं। चारों स्तम्भ एक ही प्रकार के हैं। अलंकरण सामान्य हैं। स्तम्भों के निचले व ऊपरी भाग वर्गाकार हैं। सोलह पहलुओं वाला मध्य भाग घण्टा एवं किंकिणि के चित्रण द्वारा सज्जित है। शीर्ष भाग गोल चौकी, कीर्तिमुख व लता-वल्लरियों से आच्छादित है। स्तम्भों के शीर्ष भाग में तोड़े लगे हुए हैं जिनके समीप आलिंगनबद्ध नागों का अंकन है।

मुखमण्डप से पांच सोपान ऊपर प्रवेश द्वार है। प्रवेश द्वार के ललाट पर तीर्थंकर शाँतिनाथ की यक्षी महामानसी गरुड़ पर आसीन अंकित है। यक्षी महामानसी के तीन दाहिने हाथों में पद्म, चक्र व फल हैं तथा बायें एक हाथ में कमलनाल है। ऊपरी भाग में चैत्यालय का अंकन है। चौखट के आधार भाग में गंगा-यमुना की मूर्तियां निर्मित हैं। इनके पार्श्व में अनुचर व द्वारपाल निर्मित हैं। चौखट पर बेल-बूटे, नाग एवं मिथुन मूर्तियाँ उत्कीर्णित हैं।

महामण्डप में दाहिनी ओर तीर्थंकर शांतिनाथ की दस फुट ऊँची कायोत्सर्ग प्रतिमा दीवार के सहारे स्थापित है। प्रतिमा के नीचे दोनों ओर दो भक्तों की आकृतियां हैं। एक मूर्ति तीर्थंकर पुष्पदन्त की है। यह पद्मासन मूर्ति तीन फुट दो इंच ऊँची है। सिर के पीछे प्रभामण्डल निर्मित है। इसके कुछ ऊपरी भाग खण्डित हैं। इनके अतिरिक्त दो पद्मासन व तीन खड्गासन मूर्तियां और भी हैं। इनमें तीर्थंकर शांतिनाथ की पांच फुट तीन इंच ऊँची प्रतिमा का ऊपरी कुछ भाग खण्डित है। इसके अधोभाग में हाथ जोड़े हुए दो इन्द्र वीरासन में बैठे हैं। लगभग सभी मूर्तियां दीवार में निर्मित बृहदाकार आलों में विराजमान हैं। इस भाग की छत का मध्य भाग ध्वस्त हो चुका है। अवशिष्ट भाग के सहारे के लिए

चार नवनिर्मित प्रस्तर स्तम्भ लगा दिये गये हैं। छत का अवशिष्ट भाग अलंकृत है। ऊपरी भाग में चारों ओर पृथक-पृथक कोष्ठों में चैत्यालय निर्मित हैं। यह वर्गाकार मण्डप लगभग अट्ठारह फुट लम्बा-चौड़ा है।

महामण्डप के प्रवेश द्वार की भांति गर्भगृह का प्रवेश द्वार भी अलंकृत है। इसके दो सरदलों में से निचले सरदलों की रधिकाओं में तीर्थंकरों की नौ कायोत्सर्ग प्रतिमायें एक पंक्ति में अंकित हैं। सरदल के बायें सिरे पर हाथ में वीणा लिए सरस्वती की प्रतिमा है। दाहिने सिरे पर मालाधारी व युगल मूर्तियां निर्मित हैं। विद्या देवी की एक खड़ी हुई चतुर्भुज प्रतिमा भी है जिसका एक हाथ वरद मुद्रा में है व अन्य हाथों में पुस्तक और कलश हैं। चौखट के निचले भाग में गंगा व यमुना देवी का अंकन है। पार्श्व में द्वारपाल हैं। पूर्वाभिमुख एक द्वारपाल के हाथ में गदा है।

गर्भगृह १३ फुट चौड़ा व १५ फुट लम्बा है। शिलासन पर मध्य में तीर्थंकर शांतिनाथ की सवा पांच फुट ऊँची पद्मासनस्थ प्रतिमा विराजमान है। सिर पर छत्र-त्रयी है। शीर्षकोणों में आकाश-चारी गंधर्व माला लिए हुए प्रदर्शित हैं। दाहिनी ओर शिलाफलक में निर्मित साढ़े पांच फुट ऊँची एक कायोत्सर्ग तीर्थंकर प्रतिमा अवस्थित है। सिर पर छत्र है, दोनों ओर मालावाहक गन्धर्व हैं तथा अधोभाग में चमरधारी इन्द्र एवं यक्ष-यक्षी अंकित हैं। आस-पास और भी लघु आकार की तीर्थंकर प्रतिमाएं हैं। दाहिनी ओर दीवार के सहारे साढ़े चार फुट ऊँची दो पद्मासनस्थ तीर्थंकर प्रतिमायें रखी हुई हैं। मुख्यमूर्ति के बायीं ओर भी एक सवा तीन फुट ऊँची पद्मासनस्थ तीर्थंकर प्रतिमा स्थापित है।

गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ है जिसमें प्रवेश एवं निर्गम हेतु दो द्वार हैं। द्वारों की ऊपरी रधिकायें मूर्तियों से अलंकृत हैं। दक्षिणी प्रवेश द्वार के ऊपर निचले स्तर पर नौ, मध्य में चार व ऊपरी स्तर पर सात तीर्थंकर प्रतिमाएं उत्कीर्णित हैं। द्वार की चौखट पर गंगा, यमुना आदि देवियां हैं व उनके समीप द्वारपाल

निर्मित हैं। उत्तरी निर्गम द्वार के ऊपरी भाग में सप्त मातृकायें नृत्य मुद्रा में अंकित हैं। उनके पार्श्व में गणेश व वीरभद्र हैं। सभी अंकन कलापूर्ण हैं। प्रदक्षिणा पथ की तीनों दिशाओं में तीन देवकोष्ठ हैं। दक्षिणी देवकोष्ठ में एक पद्मासनस्थ तीर्थंकर मूर्ति रखी हुई है एवं उत्तरी देवकोष्ठ में यक्षी चक्रेश्वरी आसीन है। पश्चिमी बाह्य भित्ति में एक गवाक्ष है जो प्रदक्षिणा पथ में वायु और प्रकाश प्रदान करता है।

मन्दिर के बाह्य भाग की सुदृढ़ पीठ जंघा को आधार प्रदान करती है। जंघा भोगकक्ष व देवकोष्ठों से मण्डित है जिनमें दिक्पालों तथा यक्ष-यक्षियों की अलंकृत प्रतिमायें प्रदर्शित हैं। जंघा के दक्षिण पूर्व के कोने में स्थित प्रथम देवकोष्ठ में अष्टभुजी पद्मावती देवी की प्रतिमा है जो कुक्कुट-सर्प पर ललितासन में बैठी हुई हैं। द्वितीय देवकोष्ठ में पद्मासन में बैठी देवी पुरुषदत्ता है जो पाचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ की यक्षी है। इसके आगे कुछ देवकोष्ठ रिक्त हैं। इनके बीच अन्तराल में छोटे-छोटे देवकोष्ठों में यक्ष-यक्षी एवं पद्मावती देवी की प्रतिमायें हैं। पश्चिमी देवकोष्ठ में एक देवी प्रतिमा है जो मकर पर आसीन है। उत्तरी भित्ति के देवकोष्ठों के प्रथम देवकोष्ठ में ललितासन में देवी मनोवेगा है। यह छठवें तीर्थंकर पद्मप्रभु की यक्षी है। इसके अवशिष्ट दाहिने दो हाथों में पाश व कृपाण हैं और बाएं तीन हाथों में घण्टा, ढाल व पाश हैं। एक अन्य देवकोष्ठ में नागफण छत्र के नीचे तीर्थंकर पार्श्वनाथ की यक्षी पद्मावती हैं। नौंवां देवकोष्ठ रिक्त है। इसी से संलग्न देवकोष्ठ में एक मकरारूढ़ देवी ललितासन में स्थित है जिसके एक हाथ में दर्पण व दूसरे में पुष्प है।

मन्दिर के पश्चिमी उत्तर भाग में पर्वत शिलाओं के कारण पश्चिम के दो व उत्तर के दो देवकोष्ठों का निर्माण सम्भव नहीं हो सका है। उत्तर के चौदहवें देवकोष्ठ में कुबेर की खड़ी हुई मूर्ति है। नीचे एक चतर्भुजी देवी है जिसके हाथों में पद्मपुष्प, नीलकमल व दर्पण हैं। पन्द्रहवें देवकोष्ठ में ललितासन में बैठी हुई एक बारहभुजी

देवी प्रतिमा है। सोलहवें देवकोष्ठ में गजारूढ़ इन्द्र की प्रतिमा है। नीचे रथारूढ़ बारहभुजी देवी प्रतिमा है। यह द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ की यक्षी अतिजा या रोहिणी है। सत्रहवें देवकोष्ठ में एक चतुर्भुज प्रतिमा है। इसके सिर व हाथ खण्डित हैं। अठाहरहवें देवकोष्ठ में मातंगारूढ़ चतुर्भुज देवी है। यह पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ की यक्षी श्वेतांवरा या कंदर्पी है। उन्नीसवें देवकोष्ठ में भी एक चतुर्भुजी देवी स्थापित है जिसके आसन के नीचे तीर्थंकर सम्भवनाथ का लांछन अश्व अंकित है।

ऐसा लगता है कि अनेक देवियों को एक माला में पिरोकर मन्दिर के चारों ओर सुशोभित कर दिये जाने के कारण ही इस मन्दिर का 'माला देवी' नाम पड़ा।

ग्राम के नवनिर्मित मन्दिर में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की अति प्राचीन, अतिशय पूर्ण, पाषाण निर्मित पांच फुट ऊँची भव्य प्रतिमा विराजमान है जो यहीं उत्खनन में प्राप्त हुई थी। मूर्ति के शीर्ष पर छत्र-त्रयी है। ऊपर दोनो ओर पुष्पमालायें लिये हुए देवियां खड़ी हैं। मूर्ति के दोनों ओर शेष २३ तीर्थंकरों की लघु आकार में प्रतिमायें निर्मित हैं। ऊपर सप्त-फण है। इस तरह यह एक चौबीसी प्रतिमा है जिसके मूलनायक तीर्थंकर पार्श्वनाथ मध्य में स्थित हैं। कला की दृष्टि से यह प्रतिमा चन्देल शैली में, दसवीं शताब्दी में, निर्मित प्रतीत होती है।

वज्रमठ मन्दिर :

कला की दृष्टि से वज्रमठ मन्दिर खजुराहो में निर्मित पार्श्वनाथ मन्दिर से कुछ साम्य रखता है। इसमें एक पंक्ति में तीन गर्भगृह हैं। गर्भगृहों के बाहर अर्द्धमण्डप हैं। मध्य गर्भगृह आठ फुट वर्गाकार है। इसकी एक मात्र वेदी पर तीर्थंकर ऋषभदेव की छह फुट ऊँची, देशी पाषाण निर्मित, भव्य एवं मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। बालों की लटें कंधों पर छितराई हुई हैं। शीर्ष पर तीन छत्र व पीछे प्रभामण्डल है। ऊपर दोनों पार्श्वों में गज व हाथ में माला लिये आकाशचारी गंधर्व अंकित हैं। दो फुट ऊँची एक खड्गासन

प्रतिमा और भी है। अन्य दोनों गर्भगृहों में भी कुछ तीर्थंकरों की खड्गासन व पद्मासन में प्रतिमायें हैं। बायें गर्भगृह में पर्यंक पर लेटी हुई तीर्थंकर माता की मूर्ति है जिसके समीप बाल तीर्थंकर लेटे हुए हैं। समीप ही कुछ परिचारिकायें भी प्रदर्शित हैं।

तीनों गर्भगृहों के द्वार अलंकृत हैं। सरदल पर अर्हंत प्रतिमा उत्कीर्णित है। चौखटों पर युगल मूर्तियां व अधोभाग में देवी मूर्तियां हैं। मध्य गर्भगृह के ऊपर समुन्नत शिखर है जिस पर आमलक चन्द्रिका, लघु आमलक व बीजपूरक कलात्मक रूप में निर्मित हैं। शेष दोनों गर्भगृहों की छतें स्तूपाकार हैं जो सोपान शैली में ऊपर उठकर शिखर में परिवर्तित हो गई हैं।

मन्दिर की वाह्य भित्तियों पर अलंकरण पट्टिकाएं निर्मित हैं जिनमें विभिन्न तीर्थंकरों की शासन देवियों, सुर-सुन्दरियों एवं सर्पों की आकृतियां उत्कीर्णित हैं। मन्दिर की बाह्य भित्तियों पर निर्मित अनेक हिन्दू देवताओं की मूर्तियाँ धार्मिक सौहार्द की प्रतीक हैं।

इस मन्दिर का नाम 'वज्रमठ' कैसे पड़ा, इस सम्बन्ध में कोई भी साक्ष्य प्राप्त नहीं है। निर्माण काल की दृष्टि से मालादेवी मन्दिर की तरह इसका निर्माण काल भी नौवीं से ग्यारहवीं शती के मध्य प्रतीत होता है।

——

शोध सारांश

जैन योग और बौद्ध योग का तुलनात्मक अध्ययन

—डा० (श्रीमती) सुधा जैन सिन्हा

[जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय), लाडनूं, द्वारा जुलाई १९९६ में पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत प्रथम शोध-प्रबन्ध; निर्देशक डा० रज्जन कुमार]

योग साधना हमारी भारतीय चिन्तनधारा की अमूल्य निधि है। चार्वाक दर्शन को छोड़कर सम्पूर्ण भारतीय दर्शन की प्राय: सभी शाखाओं ने योग को अपनी विचारधारा का अंग बनाया है। वैदिक विचारधारा, जिसमें योग का क्रमबद्ध विवेचन पातंजल योग दर्शन में देखने को मिलता है, के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। जैन परम्परा में मन, वाणी और शरीर की गतिशीलता को योग नाम से विभूषित किया गया है। इसी प्रकार बौद्ध परम्परा में योग के स्थान पर "ध्यान" और "समाधि" शब्दों का प्रयोग मिलता है। बौद्ध परम्परा में समाधि को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि कुशल चित्त की एकाग्रता को समाधि कहते हैं। जहां तक योग के शाब्दिक अर्थ की बात है तो कुछ विचारकों ने "योग" शब्द का प्रयोग जोड़ने के अर्थ में ग्रहण किया है, तो कुछ विचारकों ने ध्यान, संयोग, चित्तवृत्ति निरोध, निर्वाण आदि के रूप में। "योग" शब्द की उत्पत्ति 'युज्' धातु से मानी जाती है, जिसके दो अर्थ होते हैं—१. जोडना व संयोजित करना, तथा २. समाधि, मन: स्थिरता आदि। लेकिन जैन एवं बौद्ध साहित्यों में "योग" शब्द का प्रयोग एक निश्चित अर्थ में हुआ है। प्राकृत में "जोग" शब्द आया है जिसका सामान्य अर्थ होता है—क्रिया, जो प्रशस्त या अप्रशस्त, अथवा शुभ या अशुभ, दोनों प्रकार की हो सकती है। इसी प्रकार बौद्ध साहित्य में "योग" शब्द का प्रयोग बन्धन या संयोजन के अर्थ में हुआ है।

योग, ध्यान और समाधि तीनों एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। मन जिसे चित्त भी कहा जाता है, की चंचलता का निरोध ही योग है, जैसा कि सभी दार्शनिकों ने स्वीकार किया है। अतः मन या चित्त की चंचलता को समाप्त करना ही योग-साधना का परम लक्ष्य है। चित्त की चंचलता जहां समाप्त होती है वहीं साधना अपनी पूर्णता को प्राप्त करती है और साधना की वही पूर्णता ध्यान कहलाती है। इसी प्रकार ध्यान और समाधि भी समानार्थक है। चित्त की वृत्तियों का उद्वेलित होना असमाधि है तथा उद्विग्नता का समाप्त हो जाना समाधि है। ध्यान और समाधि दोनों ही चित्त की समत्वपूर्ण स्थिति का नाम है। इस तरह ध्यान और समाधि, दोनों समानार्थक प्रतीत होते हैं। अन्तर है तो साध्य-साधन की दृष्टि से। ध्यान समाधि का साधन है तो समाधि साध्य। इस प्रकार चित्त वृत्तियों की चंचलता का समाप्त होना ध्यान कहलाता है, और वही समाधि के नाम से जाना जाता है तथा उसे ही योग कहते हैं।

जहां तक इन्द्रियों को नियन्त्रित करने की बात है, इन्द्रियों को नियन्त्रित करने के क्रम में सर्वप्रथम चित्त या मन को नियन्त्रित करने का विधान बताया गया है। दोनों परम्पराओं में चित्त की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन है। जैन परम्परा में जहां विक्षिप्त मन, यातायात मन, श्लिष्ट मन तथा सुलील मन आदि की अवस्थाओं का वर्णन किया गया है, वहीं बौद्ध परम्परा में कामावचर चित्त, रूपावचर चित्त, अरूपावचर चित्त तथा लोकोत्तर चित्त का निरूपण हुआ है। यद्यपि दोनों परम्पराओं में मन या चित्त की अवस्थाओं को देखने से अन्तर मालूम पड़ता है लेकिन उनके मूल दृष्टिकोण में अन्तर नहीं है। जैन परम्परा का विक्षिप्त मन तथा बौद्ध परम्परा में वर्णित कामावचर चित्त दोनों ही समान भाव रखते हैं। इसके अनुसार इस अवस्था में चित्त में वासनाओं और कामनाओं की बहुलता रहती है। इसी प्रकार जैन परम्परा का यातायात मन, बौद्ध परम्परा के रूपावचर चित्त के समानार्थक है, क्योंकि इस

अवस्था में चित्त में अल्पकालिक अवस्था होती है। जैन परम्परा का श्लिष्ट मन तथा बौद्ध दर्शन का अरूपावचर चित्त भी समान ही हैं, क्योंकि इसमें मन की स्थिति स्थिर होती है। मन या चित्त की अन्तिम अवस्था जैन परम्परा का सुलीन मन तथा बौद्ध परम्परा का लोकोत्तर चित्त दोनों ही समान अर्थों के द्योतक हैं; इसमें वासना, संस्कार एवं संकल्प-विकल्प का पूर्ण अभाव हो जाता है। अतः चित्तवृत्तियों का या वासनाओं का विलयन ही ध्यान या योग परम्पराओं का मुख्य उद्देश्य है।

लेकिन योग-साधना एक प्रक्रिया है। अतः इस साधना में प्रवृत्त होने से पूर्व साधक को योग-साधना के आध्यात्मिक एवं तात्त्विक विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि किसी भी क्रिया को करने के लिये सबसे पहले उसके सम्बन्ध में ज्ञान का होना आवश्यक है। ज्ञान के अभाव में कोई भी क्रिया या कोई भी साधना भले ही वह कितनी ही उत्कृष्ट क्यों न हो, लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक नहीं हो सकती, इसलिये साधना प्रारम्भ करने के पूर्व ज्ञान का होना आवश्यक है और ज्ञान के अनुरूप आचरण ही योग कहलाता है। इसी प्रकार जिसमें योग या एकाग्रता का अभाव रहता है वह ज्ञानी नहीं कहला सकता। इस प्रकार साधना के लिये ज्ञान आवश्यक है तथा ज्ञान के विकास के लिए साधना। ज्ञान और योग की संयुक्त साधना से ही साध्य की सिद्धि होती है।

साधना की सिद्धि में ध्यान को साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। जैन परम्परा में ध्यान चार प्रकार के बताये गये हैं—आर्त्त, रौद्र, धर्म तथा शुक्ल। आर्त्त और रौद्र ध्यान व्यक्ति के स्वभाव में होते हैं और इसके लिए व्यक्ति को किसी प्रकार के विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है। धर्म-ध्यान तथा शुक्ल-ध्यान के लिए व्यक्ति को प्रयत्न करना पड़ता है। इसी प्रकार बौद्ध परम्परा में ध्यान के दो प्रकार बताये गये हैं—रूपावचर तथा अरूपावचर। पुनः उनके चार-चार विभाग किये गये हैं। साधक जैसे-जैसे ध्यान साधना द्वारा अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है

वैसे-वैसे उसका आध्यात्मिक विकास होता जाता है और जैसे-जैसे उसका आध्यात्मिक विकास होता है वैसे-वैसे वह ध्यान की चरम सीमा की ओर अग्रसर होता जाता है।

आत्म विकास की क्रमिक अवस्था में अज्ञान अथवा मिथ्यात्व ही बाधक तत्त्व है और इसी के कारण आत्मा कर्मों में जकड़ी रहती है। ज्यों-ज्यों कर्मों को व्युच्छेद होता जाता है, त्यों-त्यों आत्मा अपने गुणों से अवगत होती जाती है तथा उसे सत्य और असत्य वस्तु की पहचान होती जाती है। फलतः जीव चार घातिया कर्मों को नष्ट कर सर्वज्ञता को प्राप्त करता है। सर्वज्ञ अथवा अरहन्त अवस्था के बाद आत्मा सिद्धावस्था को प्राप्त करती है। जब शेष चार अघातिया कर्मों का भी नाश हो जाता है तब जीव या आत्मा लोक के अग्रभाग में पहुँच जाती है, जहां उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। जैन परम्परा के अनुसार यही मोक्ष है। इसी प्रकार बौद्ध परम्परा में भी तृष्णा के क्षय से जन्म-मरण की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है, वेदनायें शान्त हो जाती हैं, तथा तृष्णा का बुझ जाना ही बौद्ध परम्परा में निर्वाण है।

अध्ययन की सुविधा के लिये प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है—प्रथमतः "प्राचीन भारतीय योग परम्परा—एक परिचय" के अन्तर्गत योग की ऐतिहासिकता को बताते हुए वेदों, उपनिषदों, महाभारत, गीता, स्मृति ग्रन्थों, पुराणों, योग-वासिष्ठ, पातंजल व अद्वैत वेदान्त में योग तथा जैन एवं बौद्ध परम्परा में योग की अवधारणा को निरूपित किया गया है। तत्पश्चात "योग की अवधारणा : जैन एवं बौद्ध" को विश्लेषित किया गया है, जिसके अन्तर्गत दोनों परम्पराओं में योग के शाब्दिक अर्थ एवं परिभाषा को बताते हुये उनके प्रकार एवं महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। उसके बाद जैन एवं बौद्ध योग के प्रमुख योग साहित्यों की चर्चा की गयी है। जैन एवं बौद्ध योग के तत्त्वमीमांसीय आधार की चर्चा के अन्तर्गत जैन परम्परा में सत् का स्वरूप, द्रव्य का स्वरूप और कर्म सिद्धान्त तथा बौद्ध परम्परा में आर्य सत्य, अनात्म-

वाद, क्षणभंगवाद एवं कर्म सिद्धान्त का विवेचन और तुलना की गयी है। योग-साधना के आचार पक्ष को निरूपित करते हुये जैन परम्परा के अन्तर्गत चित्त शुद्धि के उपाय, श्रावकों की आचार संहिता, श्रावक के बारह व्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत, ग्यारह प्रतिमायें, षडावश्यक, श्रमणाचार, पंच महाव्रत, गुप्ति एवं समिति, बारह अनुप्रेक्षाएं तथा परीषह के स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार बौद्ध परम्परा में भी चित्त की शुद्धि के उपायों पर प्रकाश डालते हुए श्रावकों की आचारसंहिता, निषिद्ध व्यापार का परित्याग, श्रमणाचार, पंचमहाव्रत, गुप्ति, समिति और परीषह आदि की विवेचना की गयी हैं। तत्पश्चात् दोनों परम्पराओं में ध्यान का अर्थ, परिभाषा, ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी, ध्यान के प्रकार एवं उसके महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। "आध्यात्मिक विकास की भूमियां" के अन्तर्गत जैन परम्परा के चौदह गुणस्थान व आठ योग दृष्टियां तथा बौद्ध परम्परा के स्रोतापन्नभूमि, सकृदागामी आदि चार भूमियों तथा प्रमुदिता, विमला आदि दश भूमियों का विवेचन किया गया है। अन्त में, "बन्धन एवं मोक्ष" के अन्तर्गत दोनों परम्पराओं में बन्धन के कारण, बन्धन के प्रकार, बन्धन-मुक्ति की प्रक्रिया एवं मोक्ष अथवा निर्वाण की चर्चा करते हुए योग और मोक्ष पर प्रकाश डाला गया है, और तुलना करते हुए उपसंहार प्रस्तुत किया गया है।

——

चिन्तन कण

चक्रवर्ती भरत

—श्री अजित प्रसाद जैन

चक्रवर्ती भरत की ९६००० रानियां

शोधादर्श-३१ (मार्च १९९७) में प्रकाशित डा० शशि कान्त के लेख "चक्रवर्ती भरत का ऐतिह्य" में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में एक यह निष्कर्ष भी प्रतिपादित किया गया है कि "स्त्री को सम्पत्ति, भोग्या और ऐश्वर्य का प्रतीक माना गया और इसकी पुष्टि स्वरूप चक्रवर्ती की ९६००० रानियों की कल्पना की गई।" इस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए **नई दिल्ली से माननीय जस्टिस एम० एल० जैन** लिखते हैं कि—

"प्राक् ऐतिहासिक शख्शियतों के बारे में पुराणों में केवल कल्पना की उड़ानें हैं। मेरे ख्याल में ये न आगम हैं न श्रुत। फिर भी हमारी लाचारी यह है कि पुराणों के अलावा हमारे पास इनके बारे में जानने का कोई साधन नहीं है। भरत की ९६००० रानियां उनकी विवाहित पत्नियां हों, यह कतई सम्भव नहीं है। हुआ यह होगा कि जिन प्रदेशों को जीतकर भरत ने अपने साम्राज्य में शामिल किया वहां की स्त्रियों को, खास कर सुन्दर युवतियों को, भी छीन लिया और अपने विशाल जनानखाने में शामिल कर लिया। जब कोई प्रदेश दूसरे प्रदेश पर आक्रमण करता है तो पहला शिकार अबलाओं को हीं बनाया जाता है ताकि प्रतिपक्षी का जोश शीतल हो जाये, वह हिम्मत हार बैठे। यदि बाहुबली के इलाके के लिये युद्ध करना पड़ता तो शायद यह संख्या एक लाख हो जाती।"

हम जस्टिस जैन के आकलन से बहुत कुछ सहमत हैं। किन्तु हम न तो पुराणों को केवल कपोल कल्पित गप्पाष्टक मानते हैं और न शुद्ध इतिहास ग्रन्थ ही। हमारी समझ में पुराण लेखन के पीछे मनीषी आचार्यों का उद्देश्य सुदूर अतीत के इतिहास पुरुषों के जीवन की प्रमुख घटनाओं एवं महान् कार्यों की स्मृति संजोए रखना तथा

उनके माध्यम से धर्मोपदेश देना था। पुराणों में ऐतिहासिक तथ्य तो गर्भित हैं पर उन पर कवि कल्पना तथा अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन शैली का गहरा मुलम्मा चढ़ा है। प्राक् ऐतिहासिक काल के पुराण पुरुषों के विषय में हजारों-हजार साल बाद रचे गये पुराण ग्रन्थों के आधार पर निश्चित रूप से कुछ स्थिर करना तो दुष्कर है ही, अब से दो-ढाई सौ वर्ष पूर्व की महत्वपूर्ण घटनाओं एवं प्रधान पुरुषों का सही इतिहास निश्चित करने के लिये भी शोध अध्ययन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

तृतीय काल के अन्तिम चरण में प्रस्फुटित हो रही सभ्यता के आदि युग में यद्यपि भगवान ऋषभदेव ने विवाह-प्रथा का सूत्रपात कर दिया था, युगलिया संस्कृति को समाप्त होने में काफी समय लगा होगा क्योंकि समाज-सुधार धीरे-धीरे ही जड़ पकड़ते हैं। विवाह के लिये उपलब्ध अन्य कुलोत्पन्न कन्याओं की कमी भी विवाह-प्रथा की धीमी गति का कारण हो सकती है। पिता ऋषभदेव ने बाहुबली सहोदरा सुन्दरी को भरत की तथा भरत सहोदरा ब्राह्मी को बाहुबली की वाग्दत्ता घोषित कर दिया था पर कदाचित् विभिन्न कुलोत्पन्न न होने के कारण उनके विवाह नहीं किये—ऐसा कथन **आवश्यक चूर्णि** में आता है। विजय अभियान पर जाने के समय महाराज भरत की आयु ७७ लाख पूर्व वर्ष हो गयी बतायी गयी है। उस समय तक उनका कोई विवाह हुआ था या कितने विवाह हुये थे, इसका स्पष्ट उल्लेख प्राचीन पुराण ग्रन्थों में नहीं मिलता तथा ९६००० रानियों की प्रायः सम्पूर्ण संख्या विजित प्रदेशों से बटोरी गयी सुन्दर स्त्रियों की है जिन्हें चक्रवर्ती ने अपनी काम पिपासा की तृप्ति हेतु अपने जनानखाने में शामिल किया होगा। प्राचीन भारतीय संस्कृति की ब्राह्मण व श्रमण दोनों ही धाराओं में स्त्री को सर्वोत्कृष्ट धन माना गया है तथा स्त्रियों की संख्या स्वामी के ऐश्वर्य-वैभव का प्रतीक मानी गई। ब्राह्मण धर्म में तो 'कन्यादान' महादान माना गया है। चूँकि चक्रवर्ती का बल-वैभव अतुलनीय माना गया है, अतः उनकी स्त्रियों की संख्या की

अवधारणा ९६००० (जिसे असंख्यात भी कह सकते हैं) की गई जो अतुलनीय है। इस प्रसंग में यह ध्यान देने योग्य है कि इतिहास काल में भी मुसलमान बादशाहों तथा हिन्दू राजाओं के अन्तःपुर में स्त्रियों (पत्नि, उपपत्नि, रखैल, दासियों) की संख्या जो सभी राजा की भोग्या होती थीं, सैकड़ों-हजारों में हो जाती थी।

इसी प्रसंग में हमारे एक अन्य सुधि पाठक **श्री सुखमाल चन्द जैन (F-3, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली)** ने चक्रवर्ती के चक्र रत्न तथा ९६००० रानियों की संख्या की एक निराली व्याख्या निम्न प्रकार की है—

"दिग्विजय के बाद अयोध्या के बाहर ही चक्र रुक गया। कौन सा चक्र ? हथियार नहीं जिसके १००० आरे थे। पूरी सेना रुक गई क्योंकि बाहुबली जी भरत चक्र में शामिल नहीं थे। सेना का प्रत्येक राजा चक्र का मेम्बर होने से चक्रवर्ती था (लायन्स क्लब के लायन की तरह)। भरत का चक्रेश्वर-चक्राधीश के पद पर अभिषेक होना था। सेना ने कहा कि यह कमी (बाहुबली जी की) न रहे तो हो सकता है। ·····९६००० राजा मेम्बर थे जिनकी ये रानियां थीं।"

महाराज भरत की ९६ हजार रानियों के प्रसंग पर **वसुदेव हिंडी** (प्राकृत, प्रथम-द्वितीय शती ई०) तथा **बृहत्कथाश्लोक संग्रह** में एक और रोचक अनुश्रुति प्राप्त होती है जो इस प्रकार है—

"राजा भरत ने समुद्र पर्यन्त मिलने वाली कान्ताओं को एकत्र कर, अन्त में **उन सबके साथ विवाह किया।** लेकिन जिस स्त्री का उसने सर्वप्रथम पाणिग्रहण किया, उसी से वह सन्तुष्ट हो गया। शेष को आठ गणों के सुपुर्द कर दिया। प्रत्येक गण में प्रमुख स्त्री को राजा ने वाहन, छत्र और चामर की अनुज्ञा प्रदान की। जो गणों में अन्यों से महान थीं, उन्हें **महागणिका** शब्द से सम्बोधित किया गया। गण मुख्य गणिकाओं के एक गण में कलिंगसेना (वेश्या) उत्पन्न हुई।" [देखें, **तित्थयर** (मासिक) मई १९९७ का पृष्ठ १३]। वस्तुतः उस सुदूर अतीत की किसी भी घटना के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से कहना कठिन है।

आयुध शाला में चक्र-रत्न की उत्पत्ति तथा भरत का चक्रवर्तित्व

हमारा अपना आकलन है कि भरत चक्रवर्ती के रूप में जन-मानस का स्मृति-पटल सुदूर अतीत काल में हुए एक ऐसे प्रथम दुर्दान्त विजेता (साथ ही प्रजा-पालक राजर्षि) की छवि संजोये हुये था जिसकी सैनिक प्रयोगशाला के वैज्ञानिक एक ऐसे अजेय शस्त्र का आविष्कार करने में सफल हो गये जिसकी संहारक शक्ति का सामना करने या प्रतिरोध करने की सामर्थ्य उस समय की किसी राज सत्ता में नहीं थी। इस अजेय शस्त्र को पुराणकारों-कवियों ने **चक्र-रत्न** का नाम दिया। इस अजेय आयुध की प्राप्ति ने महाराज भरत के हृदय में विश्व-विजेता बनने की आकांक्षा जागृत कर दी और वे अपने एक सहस्रवर्षीय विजय अभियान पर निकल पड़े। ऐतिहासिक काल में भी संसार के अधिकांश महान् विजेताओं ने तत्कालीन अपराजेय आयुधों के आविष्कार के बल पर ही परम्परा-गत शस्त्रों से लड़ने वालों पर विजय प्राप्त कर विश्व-विजेता बनने के सपने संजोये। बारूद, बन्दूक, तोप, बम, एटम बम, हाइड्रोजन बम, मिसाइल आदि का आविष्कार ऐसे ही अपराजेय आयुध की खोज के दुष्परिणाम हैं। चक्र-रत्न के एक सहस्र दीप्तिवान आरों का एक यह भी अर्थ हो सकता है कि चक्रवर्ती के कटक में शूरवीर सैनिकों के एक हजार दस्ते थे।

भरत-बाहुबली युद्ध

छहों खण्ड पृथ्वी की विजय से सन्तुष्ट, विजित प्रदेशों से प्राप्त अपार सम्पदा के स्वामी चक्रवर्ती भरत जब अपनी राजधानी में प्रवेश करने का उपक्रम कर रहे होते हैं तो किसी ने व्यंग कर दिया कि बाहुबली के स्वतन्त्र राज्य के रहते महाराज भरत का सार्वभौम सत्ताधीश होने का दंभ खोखला है। चक्रवर्ती के अभिमान को ठेस लगी और उन्होंने अपने अनुज को अधीनता स्वीकार करने का फरमान जारी कर दिया। बाहुवली के इन्कार से क्रोधित हो वे अपने पूरे सैन्य बल के साथ उसके छोटे-से राज्य पर आक्रमण करने के लिये दौड़ पड़े। (शेष पृष्ठ १३१ पर)

विचार बिन्दु

क्या वेद में इतिहास है ?

—आचार्य शिवचन्द शर्मा

आस्तिक लोग वेदों को नित्य मानते हैं। वेदों में इतिहास मान लेने पर तो उन्हें सादि मानना पड़ेगा और नित्यता भंग हो जायेगी। वेदों में शब्दों का यौगिक अर्थ ग्रहण किया जाता है और यौगिक प्रक्रियानुसार अर्थ होने पर कोई भी शब्द व्यक्ति अथवा स्थान विशेष का वाचक नहीं रहता। वास्तव में बात यह है कि वेद में इतिहास का उल्लेख औपचारिक (गौण) या आलंकारिक रूप ही में है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए सायण से एक हजार वर्ष पूर्व निरुक्त की टीका में स्कन्द स्वामी ने लिखा—"औपचारिको मन्त्रेष्वाख्यान समयः। परमार्थे तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्।" उपर्युक्त

(पृष्ठ १३० का शेष)

दोनों भाइयों में घोर द्वन्द-युद्ध हुआ जिसमें भरत निरन्तर हारते गये। (कोई-कोई कथाकार १२ वर्ष तक सैन्य युद्ध तथा उसके अनिर्णीत रहने पर द्वन्द-युद्ध हुआ, भी कहते हैं।) अन्त में विजय श्री हाथ से फिसलते देख भरत ने अत्यन्त क्रोधित हो चक्र-रत्न का मारक प्रहार किया किन्तु बाहुबली ने उसे भी निष्फल कर दिया। चक्रवर्ती का मान गलित हुआ। उससे भी अधिक आत्म-ग्लानि अगले क्षण ही हुई जब बाहुबली ने प्राप्त होती विजय-श्री को ठुकरा कर सब कुछ भरत को सौंप कर मुनि-वेश धारण कर वन-गमन किया। खिन्न-हृदय भरत भगवान के समवशरण में गये, धर्मोपदेश सुन शान्ति प्राप्त की, तत्त्व ज्ञान प्राप्त किया, कर्त्तव्य का बोध हुआ। महान् प्रजा-वत्सल प्रजा-पालक सम्राट बने। यह भी सम्भव है कि इसी कारण उनका नाम 'भरत' प्रसिद्ध हुआ हो। अपार वैभव सम्पदा के बीच रहते हुए भी भरत संसार देह से निर्लिप्त हो गए। वे विदेह हो गये, राजर्षि हो गये, कृतकृत्य हो गये। दीक्षा लेकर केवलज्ञान की प्राप्ति तो मात्र औपचारिकता ही कही जाएगी।

बात कहकर स्कन्द स्वामी ने निरुक्त शास्त्र के ही सिद्धान्त का समर्थन किया है। वैदिक साहित्य में जहाँ देवापि और शन्तनु के आख्यान का उल्लेख है, वहाँ देवापि से विद्युत और शन्तनु से जल अर्थ लिया गया है। वेद में उल्लिखित इन्द्र, वृत्र, विश्वामित्र, पुरुरवा, उर्वशी, नहुष, ययाति, शुक्र और देवयानी आदि शब्द आकाशीय पदार्थ के परिचायक हैं। इन्द्र और वृत्र से सम्बन्ध रखने वाला समस्त वर्णन वास्तव में मेघ और विद्युत का ही वर्णन है। वेदों में पुरुरवा और उर्वशी का वर्णन भी आलंकारिक रूप में ही हुआ है। पुरुरवा सूर्य का वाचक है और उर्वशी उसकी एक किरण है। लोक में प्रचलित इन्द्र की अनेक अप्सरायें भी उसकी किरणें हैं। पाश्चात्य विद्वान् प्रोफेसर मैक्स मूलर ने इस बात को अंगीकार किया है कि पुरुरवा और उर्वशी की कथा वास्तव में उषा और सूर्य का आलंकारिक रूप में वर्णन करती है।

वेद में प्रयुक्त सभी शब्द यौगिक हैं। इस तथ्य को न समझने के कारण ही मनमाने अर्थों का प्रचलन हुआ। वेदों में प्रयुक्त अहल्या शब्द का अर्थ है रात्रि। दिन में लय होने (न रहने) के कारण इसे अहल्या कहा गया। इसी प्रकार एक शब्द है 'लोपा मुद्रा'। मुद्–रा धातु से बने मुद्रा शब्द का अर्थ होता है, सुख शान्ति पहुँचाने वाला पदार्थ, और जब सभी पदार्थों का लोप (विनाश) हो जाता हैं, उस विपत्ति काल की अवस्था को लोपामुद्रा कहा जाता है। वेद मन्त्रों में आये संज्ञापद आख्यातज होने के कारण व्यक्ति विशेष के वाचक नहीं हो सकते। उनका अर्थ यौगिक अर्थात् धात्वर्थ के अनुकूल करना ही न्याय संगत माना जायेगा।

अलग-अलग जगह प्रयुक्त ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा भौगोलिक स्थानों के नाम भले ही इतिहास का भ्रम पैदा कर देते हों, लेकिन जब पूर्वापर प्रसंग को जोड़कर सामञ्जस्य करने की चेष्टा की जाती है, तो इतिहास के विपरीत होने से ऐतिहासिकता समाप्त हो जाती है। अथर्व वेद में अर्जुन को द्रोपदी (कृष्णा) का पुत्र कहा गया है—"कृष्णायाः पुत्रोऽर्जुनः।" जबकि इतिहास प्रसिद्ध अर्जुन

द्रौपदी का पुत्र नहीं अपितु पति था। इन पदों का यौगिक अर्थ करने पर स्थिति स्पष्ट हो जाती हैं। **शतपथ ब्राह्मण** कहता है—"रात्रिर्वै कृष्णा, तस्या वत्सोऽर्जुनः", अर्थात् रात्रि का नाम कृष्णा है, उससे उत्पन्न होने के कारण दिन (अर्जुन) उसका पुत्र है। इस प्रकार वेद में प्रयुक्त कृष्णा और अर्जुन शब्द **महाभारत** की द्रौपदी व अर्जुन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते। **ऋग्वेद** में कृष्ण और अर्जुन ये दोनों नाम एक ही शब्द 'दिन' के वाचक हैं—"अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च", जब कि **महाभारत** में दोनों अलग-अलग हैं। इसी तरह वेद में प्रयुक्त अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका शब्द क्रमशः माता, दादी, परदादी के वाचक हैं। **महाभारत** में ये काशिराज की तीन कन्यायें हैं, जिन्हें भीष्मपितामह भगा कर ले गये थे। श्री पं० रघुनन्दन शर्मा ने **वैदिक सम्पत्ति** में लिखा है कि वेद में दवा को भी अम्बा कहा गया है—"शतं वो अम्ब धामानि·····इमं मे अगदं कृधि", अर्थात्, हे अम्ब ! मुझे आरोग्य कीजिये। दूसरी जगह इन तीनों अम्बाओं (दवाओं) से होम करने का भी उल्लेख है—"सह स्वस्नाम्बिकया तं जुषस्व।" इससे स्पष्ट है कि **यजुर्वेद** में महाभारत कालीन कन्याओं का जिक्र नहीं है, अपितु औषधियों के नाम हैं।

इसी तरह **अथर्ववेद** में अयोध्या नगरी का नाम आता है, परन्तु उसका मतलब उस अयोध्या से नहीं है, जिसे राजा इक्ष्वाकु ने बसाया था। वास्तव में, वेद में शरीर का नाम अयोध्या है—"अष्टाचक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥", अर्थात्, आठ परिखा और नव द्वार वाली देव नगरी अयोध्या है ; इसमें हिरण्य कोष है, जो स्वर्ग ज्योति से आवृत्त है। यथार्थता यह है कि महाराजा मनु के वंशजों ने सरयू-तट पर जिस अयोध्या नगरी को बसाया था, उसका नाम वेद के शब्द से ही रखा गया था। इस विषय में मनु ने स्पष्ट घोषणा की है—"वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक संज्ञाश्च निर्ममे", अर्थात्, वेद शब्दों से ही सब पदार्थों के नाम रखे गये हैं।

जिन शब्दों से यहाँ लोक की नदियाँ पुकारी जाती हैं, वेदों में

उन्हीं शब्दों के कई अर्थ होते हैं। उन शब्दों का धात्वर्थ—चलने वाला, बहने वाला, वेग वाला, आदि होता है। नदियां भी इसी प्रकार का रूप रखती हैं। वे भी चलने वाली, बहने वाली, और वेग वाली, होती हैं। फलस्वरूप लोक में गंगा, यमुना, सरस्वती आदि शब्द केवल नदियों के ही लिये रूढ़ हो गये हैं, लेकिन वेद में इन शब्दों से किरण, नदी, वाणी, आदि अनेक भावों का वर्णन किया गया है। वेद में सूर्य की दश रश्मियों का वर्णन है—"रश्मिभिर्दशभिः।" इन दश रश्मियों में एक का नाम कपिल है—"दशानामेकं कपिलम्।" इस विवेचन से स्पष्ट है कि ये गंगा आदि नाम नव किरणों के हैं, दशवीं किरण कपिल कहलाती है। **यजुर्वेद** का मन्त्र है—

"पञ्चनद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वतीतु पञ्चनद्या सा देशेऽभवत् सरित्॥"

इसमें पाँच नदियों का उल्लेख हैं। इसी आधार पर कुछ लोग वेद में पंजाब प्रदेश का वर्णन बतलाते हैं, लेकिन इस बात को सभी जानते हैं कि न तो सरस्वती नाम की नदी पंजाब में बहती है और न पाँच नदियाँ सरस्वती में गिरती हैं और सरस्वती भी पाँच धाराओं में नहीं बहती। वास्तव में मन्त्र में प्रयुक्त नामों का यौगिक प्रक्रियानुसार अर्थ करने पर ज्ञात होता है कि पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान को वाणी द्वारा अनेक रूपों में अभिव्यक्त करने का यह उल्लेख है। इसी तरह **ऋग्वेद** में सप्तसिन्धु और गोमती आदि का जो उल्लेख हुआ है, वह भी नदी परक नहीं है अपितु शरीरस्थ विभिन्न नाड़ियों का वर्णन है।

वास्तव में, वेद मन्त्रों के ठीक-ठीक अर्थ की जानकारी तो निरुक्त सम्मत निर्वचन द्वारा ही सम्भव है। निरुक्ति वास्तव में शब्द के अर्थ का पर्दा खोल देती है। कौरवी बोली में गोबर के कण्डे को गोसा कहते हैं। यह शब्द संस्कृत गोसर्ग से विकसित है—सं० गो + सर्ग = गोसर्ग, गोस्सअ – गोस्सा – गोसा। इस विकास क्रम मे अवगत हो जाने पर गोसा शब्द का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। वेद में लङ्, लुङ् और लिट् लकारों का जो प्रयोग हुआ है, वह

(शेष पृष्ठ १३९ पर)

विचार बिन्दु

जैन मतानुसार विवाह पद्धति का आरम्भ

—डा० एम० डि० वसन्तराज*

मनुष्य जीवन में नई-नई समस्यायें, उलझनें, परेशानियाँ आ जाने पर अपने समयों में बड़े ज्ञानी, तेजस्वी, सबके आदर के पात्र व्यक्तियों ने मुखिया बन कर उन समस्याओं का निवारण कर कुछ नियम बनाकर लोगों की परेशानियों को दूर किया है, ये ही 'मनु' हैं। इनके द्वारा बनाये गये नियम सामाजिक जीवन के अंकुर हैं। भगवान ऋषभदेव एवं भरत चक्रवर्ती के समय में जो नियम लागू किए गये थे, उनसे आजकल दिखायी देने वाले सामाजिक जीवन की नींव बनी है। इस तरह के नियमन में "शादी" या "विवाह" की पद्धति को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है।

श्वेताम्बर जैन आम्नाय में विवाह पद्धति के आरम्भ की बात इस प्रकार कही गई है—

'भगवान ऋषभदेव की युवावस्था के समय की घटना है। एक दिन एक युगल [नर-नारी] ताड़ के पेड़ के नीचे खेल रहा था। उस ताड़ के पेड का एक पका हुआ फल दुर्दैव से उस युगल के नर बालक के मर्मस्थान पर गिर पड़ा और इससे वह बालक उसी समय अकाल-मृत्यु को प्राप्त हुआ। तब मुग्ध हिरणी की तरह मृत्यु के स्वरूप को न समझने वाली वह बालिका किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई। अन्य युगल उसे घेर कर खड़े हो गये। प्राचीन समय में मृत युगल के शरीरों को तत्काल महापक्षी समुद्र के बीच में डाल देते थे। लेकिन उस समय यह परम्परा बन्द हो जाने और पहले नहीं घटने वाली अकाल-मृत्यु को देखने के कारण क्रोध, भय, विस्मय से आतंकित हो वास्तविकता से अनजान अन्य युगल उस बालिका को जो अतिशय रूपवती थी और लोगों के मन व आँखों के लिये पर्व के समान थी,

---

*डा० वसन्तराज का मूल लेख कन्नड में **विवेकाभ्युदय** में प्रकाशित है। उसका हिन्दी रूपान्तर श्री बाहुबली भौसगे द्वारा प्रस्तुत है।

नाभिकुलकर [नाभिराज मनु] के पास ले आये। वह ऋषभस्वामी की प्रणयिनी बनेगी, ऐसा सोचकर उन्होंने उसे स्वीकार किया।

हमारे इस भरत क्षेत्र में जब उत्तम, मध्यम एवं जघन्य भोग भूमि की व्यवस्था चल रही थी, तब नर-नारी युगल जन्म लेते थे और आगे चल वे ही पति-पत्नी बनते थे। इस परम्परा के अनुसार ऋषभदेव के साथ सुमंगला तो युगल बनकर पैदा हुई थी, और जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, अपने साथ जन्मे बालक [पति] की अकाल मृत्यु के कारण सुनन्दा को इस विचार से कि वह ऋषभदेव की प्रणयिनी बनेगी नाभिराज ने स्वीकार किया था।

समय बीतने पर सुमंगला ने भरत और ब्राह्मी को एक साथ जन्म दिया तथा उसके बाद अठानवे पुत्रों को जन्म दिया। सुनन्दा ने बाहुबली और सुन्दरी को एक साथ जन्म दिया।

(दृष्टव्य, शीलांकाचार्य कृत **चउपन्नमहापुरिसचरियं-रिसह-सामि भरह चक्कवट्टीचरियं** और मुनि नथमल जी की **जैन दर्शन : मनन और मीमांसा**, पृष्ठ-४१)'

ऊपर के कथनानुसार सुमंगला ऋषभस्वामी के साथ युगल रूप में पैदा हुई। प्राचीन समय से आई निर्धारित पद्धति के अनुसार युगल ही पति-पत्नी बनते थे। इसलिए ऋषभस्वामी के साथ उसका विवाह होकर वह उनकी पत्नी कहलाई, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन सुनन्दा एक अन्य बालक के साथ युगल रूप में पैदा होने से उस समय के रिवाज के अनुसार वह उस बालक की पत्नी कहलाई थी, और उस बालक के मर जाने से ऋषभस्वामी ने विधवा से विवाह कर लिया, ऐसा अभिप्राय भी है। इस बारे में **शोधादर्श**-२१ (नवम्बर १९९३), पृ० १८–१९, तथा **शोधादर्श**-१६-१७ (अप्रैल-जुलाई १९९२), पृ० १९-२० व ४५-४६ भी दृष्टव्य हैं।

इस बारे में दिगम्बर जैन आम्नाय में क्या कहा गया है, यह जान लेना प्रासंगिक होगा। उससे पहले मनुओं के बारे में पौराणिक कथन का परिशीलन किया जाना चाहिए।

इस अवसर्पिणी युग के तीसरे काल (सुषम-दुषम) के अन्तिम भाग में इस भरत क्षेत्र में हुए परिवर्तन और उनके कारण आतंकित जनता को वास्तविकता की जानकारी देकर एवं उत्पन्न हुई समस्याओं का समाधान कर उन्हें शांति प्रदान करने वाले और उन लोगों से अपने नेता की मान्यता प्राप्त करने वाले "मनु" या "कुलकर" कहलाये। दिगम्बर आम्नाय के पुराणों में प्रतिश्रुति से लेकर नाभि-राय तक चौदह मनुओं का क्रम और उनसे जनता को प्राप्त समस्याओं के समाधान कार्य के बारे में कहा गया है। इस विषय का प्रतिपादन सामान्य रूप से सब पुराणों में एक-सा होने पर भी विवरण में कहीं-कहीं विशेषांश दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरण के लिए जिनसेनाचार्य के **महापुराण** में चौदह मनुओं के नाम बताकर हर एक मनु का कार्य-विशेष कहा गया है तो पुन्नाट जिनसेन के **हरिवंश पुराण** में सब मनुओं की पत्नियों के नामों का भी उल्लेख है। प्रथम सुषम-दुषम, द्वितीय सुषम एवं तृतीय सुषम-दुषम काल के आठवें मनु चक्षुष्मान के समय तक युगल नर-नारी पैदा होते थे और उनके पैदा होते ही उनके माता-पिता मर जाते थे। लेकिन चक्षुष्मान मनु के काल में उन युगल सन्तानों के माता-पिता कुछ समय तक जीवित रहते थे। इसी प्रकार समय बीतने पर बारहवें मनु मरुद्देव के काल तक माता-पिता अधिकाधिक समय तक जीवित रहने लगे। इनके पश्चात्वर्ती मनु प्रसेनजित के काल में हुए परिवर्तन के बारे में [हस्ति]मल्लिषेण सूरि के [कन्नड] **पूर्वपुराण** [पृष्ठ-७ (डा० एस० पी० पाटील द्वारा सम्पादित)] में कहा गया है कि—"उसके बाद पल्य के आठ लाख कोटि के एक भाग बीत जाने पर प्रसेनजित नामक तेरहवें मनु पैदा हुये, पांच सौ पचास धनुष ऊँचा उनका शरीर था, उनकी आयु पल्य के शतलक्ष-कोटि का एक भाग थी, वर्ण प्रियंगु था, उनके पिता अमितमति ने उनका विवाह किया, तब से विवाहादि क्रियाएँ चल पड़ीं। उस काल से युगल सन्तति पैदा होना रुक गया, एक-एक पैदा होने लगे।"

दिगम्बर आम्नाय के ऊपर के इस कथनानुसार तेरहवें मनु प्रसन्न[प्रसेन]जित के समय से नर-नारी की युगल सन्तान के रूप में जन्म की परम्परा के बदले में एक ही नर या नारी सन्तान के जन्म की परम्परा चल पड़ी और इस मनु के विवाह प्रसंग से ही दूसरों के घर से कन्या ला कर विवाह कार्य चलाने की पद्धति [रिवाज] भी चल पड़ी।

ऋषभदेव तीर्थंकर की दोनों पत्नियाँ यशस्वति और सुनन्दा दिगम्बर आम्नायानुसार कच्छ और महाकच्छ की बहने थीं [जिनसेनाचार्य का **महापुराण**, पर्व १५, श्लोक ७०]। ऋषभ तीर्थंकर की पहली पत्नी का नाम दिगम्बर आम्नाय के पुराणों में सामान्य रूप से **यशस्वति** दिया गया है, जब कि श्वेताम्बर आम्नाय के पुराणों में **सुमंगला**। [हस्ति]मल्लिषेण के **पूर्वपुराण** से उद्धृत उपर्युक्त कथन के अनुसार तेरहवें मनु प्रसन्न[प्रसेन]जित के समय में ही नर-नारी के युगल रूप से जन्मने की परम्परा चुक गई थी। इसलिये यशस्वति [सुमंगला] का जन्म ऋषभ तीर्थंकर के साथ युगल रूप में हुआ और वह आगे चल कर उनकी पत्नी बनी, श्वेताम्बर आम्नाय का यह कथन दिगम्बर आम्नाय से मेल नहीं खाता। इसी प्रकार एक बालक के साथ युगल रूप में जन्मी सुनन्दा अपने साथ जन्मे पति की मृत्यु से विधवा बनी और आगे चल कर वह ऋषभ तीर्थंकर की दूसरी विवाहिता पत्नी बनी, श्वेताम्बर आम्नाय का यह कथन भी दिगम्बर आम्नाय से मेल नहीं खाता। दिगम्बर आम्नायानुसार विवाह पद्धति, जैसा कि ऊपर बताया गया है, तेरहवें मनु प्रसन्न[प्रसेन]जित के विवाह प्रसंग के साथ शुरू होकर चली आयी है।

——

परिचर्चा

पुण्य क्या है ? श्रमण कौन है ? उपादेय किम् ?

सांगली से धर्म शास्त्रों के मननशील अध्येता, वयोवृद्ध, सुश्रावक **श्री शान्तिलाल के० शहा** ने निम्नलिखित भाव व्यक्त किये हैं—

"भगवान महावीर स्वामी ने मानव को केन्द्र बिन्दु मानकर उसकी आत्मा के परमात्मपद तक पहुंचने की प्रक्रिया को मोक्ष-प्राप्ति कहा है और उसके लिये रत्न-त्रयी तप की आराधना व उपासना करने का उपदेश दिया। उन्होंने कभी भक्ति पंथ का उल्लेख भी नहीं किया। भक्ति पंथ को आचार्यों ने भगवान महावीर के निर्वाण के ३–४ शतक बाद जैन धर्म में हिन्दू धर्म से उधार लिया और प्रस्थापित किया। चैत्यवासी साधुओं ने इसको बढ़ावा दिया और इसका प्रचार-प्रसार किया। परिणामस्वरूप आज का श्रमण संघ भी भगवान महावीर का मूल धर्मोपदेश भूल गया है और भक्ति पंथ के तन्त्र द्वारा श्रावक संघ के ऊपर अपनी हुकूमत चला रहा है। साधु लोग भक्ति पंथ का अर्थ करते हैं कि मन्दिर बन्धाओ, प्रतिमा प्रतिष्ठापित करो, उत्सव मनाओ, पूजन कराओ, और यह प्रचार

(पृष्ठ १३४ का शेष)

भूतकाल का द्योतक नहीं है क्योंकि इससे तो फिर इतिहास सिद्ध हो जायेगा और नित्यत्व का खण्डन हो जायेगा। वास्तव में, वेदों में लङ्, लुङ् और लिट् जैसे भूतकाल वाचक लकारों का प्रयोग धातु का अर्थ बताने के लिये किया गया है। काशिकाकार कहता है—"छन्दसि विषये धातुसम्बन्धे सर्वेषु कालेषु लुङ् लङ् लिटः प्रत्ययाः भवन्ति।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वेद में इतिहास सिद्ध करने की चेष्टा औचित्यपूर्ण नहीं है।*

---

* जैन आगम/पौराणिक साहित्य का भी तर्क-सम्मत बुद्धिग्राह्य विश्लेषण/विवेचन जैन विद्वानों द्वारा किया जाना अभीष्ट है। —शशि कान्त

करते हैं कि इससे तुम्हें बहुत पुण्य मिलेगा और इसी पुण्य से तुमको जो चाहो, मिलेगा।

अब प्रश्न उठता है कि यह पुण्य क्या वस्तु है? इस पुण्य में ऐसी कौन-सी शक्ति है कि भक्त की सर्व मनोकामना (ऐहिक सुख—धन-सम्पदा-विलासोपभोग इत्यादि की) पूर्ण होवे? इस पुण्य में जो भी शक्ति है, वह किसने इस पुण्य को प्रदान की? और यह पुण्य कैसा रसायन है जो साधु संघ के उपदेशानुसार पूर्व जन्मों से चला आता है? यदि कोई आदमी भक्ति पंथ में शामिल होकर साधु भगवन्त (?) की आज्ञानुसार देव-पूजा, मन्दिर-प्रतिष्ठा, उत्सव व पूजा-पाठ कराता है तो वह आदमी सर्व सुख पावेगा—ऐसा धर्म-विपरीत प्रचार श्रमण संघ कर रहा है। इसलिये यह प्रश्न पूछना जरूरी हो गया है कि क्या यह मुख्य धर्म से संगत है अथवा विसंगत है? भगवान महावीर ने जैन धर्म में व्यक्ति-पूजा को जरा भी महत्व नहीं दिया है वरन् मुक्त आत्माओं की पूजा करने, उनका संस्मरण करने और उनके उपदेशानुसार धर्मवर्तन करने को ही श्रेय कहा है। परन्तु अभी सब इससे उल्टा चल रहा है और यही सर्वमान्य हो रहा है।

पुण्य की मूल व्याख्या अत्यन्त निराली है। पुण्य का मूल अर्थ शुभ कर्म या कृत्य होता है। पुण्य से स्वर्ग मिलता है और पाप (अशुभ कर्म—कृत्य) से नरक का बन्ध होता है। मोक्ष प्राप्त करने के लिये विरक्ति या अनासक्ति आवश्यक है और उसके लिये पुण्य और पाप, दोनों का ही बन्ध बाधक है। कर्म-बन्ध का पूर्ण क्षय जीवात्मा को सिद्ध—मुक्त अवस्था प्रदान करता है। यदि शुभ कर्म से पुण्य का बन्ध होता है तो यह सोने की बेड़ी है जो स्वर्ग ले जाती है और उसी प्रकार अशुभ कर्म से पाप का बन्ध होता है जो लोहे की बेड़ी है और नरक ले जाती है। अतः बन्ध से निरपेक्ष होने के लिए अकर्म की स्थिति बनती है।"

टिप्पणी

श्री शहा का उपरोक्त विवेचन और जिज्ञासा सर्वथा उचित हैं। सैद्धांतिक दृष्टि से जैन धर्म में सांसारिक सुखोपभोग का संपादन

श्रेय नहीं है –प्रेय भी नहीं है। चमत्कार, प्रभावना, मुनि-साधु-साध्वी वेश—ये सभी आडम्बर के रूप हैं। जो वास्तव में सांसारिक मोह-माया से विरक्त हो गया है वह अपनी पूजा कराने की वांछा नहीं करेगा—उसमें सर्वप्रथम यही इच्छा समाप्त होगी। वह एकांत में मौन-साधना करेगा, क्रोध-मान-माया-लोभ के विकारों को उस साधना द्वारा शमित करेगा, और अपना आचरण दूसरों के प्रति विनयी एवं मृदु बनायेगा जिसमें प्राणि मात्र के प्रति सद्भाव और दूसरों की भावनाओं के प्रति सहानुभूति एवं विचारों के प्रति सम-दृष्टि होगी। वह अपनी आवश्यकताओं को न्यूनतम करता जायेगा और उसका प्रयत्न यह होगा कि वह कम-से-कम परावलम्बी हो—भोजन के लिये भी और आश्रय के लिये भी। गृह-त्याग मोह त्यागने का एक उपाय है, और भिक्षा की याचना मान के सर्वथा उपशमन की एक क्रिया है–अपने में निरपेक्ष रूप से ये साध्य नहीं हैं। आहार की जो क्रिया प्रचलित है, वह उसके आशय के विपरीत आडम्बर मात्र है।

जो अपना परिग्रह ही सीमित करता जा रहा है तो वह दूसरों को परिग्रह संचय करने की प्रेरणा व प्रोत्साहन देने, दूसरों के माध्यम से संस्थावाद के बहाने स्वयं (प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से) परिग्रह संचय करने, भीड़ इकट्ठा करने, चेले मूंडने (जिसके अन्तर्गत बालकों को खरीदने और मूढ़ बालिकाओं को फुसलाने का प्रपंच भी शामिल है), फिल्म बनवाने, दूरदर्शन पर प्रदर्शन करने, तीर्थ-स्थान पैदा करने और तीर्थों के लिये विवादों को हवा देने, व्यर्थ पिट्ठी-पीसन साहित्य (जिसका कोई उपयोग नहीं है) का अपनी प्रतिष्ठा हेतु प्रकाशन कराने, स्वयं अपने साहित्य पर ही शोध-प्रबन्ध लिखने की स्व-प्रचार मोह से प्रेरणा देने, अभिनय करने, कभी नखरे दिखाने और कभी गुस्सा दिखाने के हावभाव प्रदर्शित करने, अपनी जय-जयकार और पूजा कराने के लिये लोगों के जमावड़े कराने, भ्रष्ट राजनयिकों और कुत्सित वृत्ति के अपनी आम्नाय के तथा-कथित श्रावकों से गठबंधन करने और उनसे सम्पर्क के आश्रय से प्रभाव

सम्पादन एवं धन संग्रह करने, अपने को 'राष्ट्र सन्त', 'आर्यिका-रत्न', 'गणधराचार्य', 'कलिकाल सर्वज्ञ', 'शिरोमणि' आदि अलंकरणों से भूषित कराने, और अपने अनुयायियों में स्वयं को २५वां तीर्थंकर तक प्रचारित करने—की ओर प्रवृत्त ही नहीं होगा। वह तो अपने श्रम से ही अर्जित भोजन का सेवन करेगा और अपने स्वयं के श्रम से स्वयं हो अपने भोजन की व्यवस्था करेगा—तभी वह सच्चा श्रमण होगा। 'श्रमण' का सामान्य-ज्ञानपरक (common sense) सरल अर्थ यही है, उसके तात्त्विक गूढ़ शास्त्रीय अर्थ की उपादेयता संदिग्ध है। १६वीं शती के घोर नैराश्य के युग में भी नानक ने निठल्ले और समाज पर पिस्सू बने साधु (?) समुदाय को लक्ष्य कर पहली बात यही कही थी कि वही साधु होने का अधिकारी है जो अपने स्वयं के श्रम से अपना भोजन अर्जित करता है—अपने हाथों से नेक कमाई करता है (कीरत करनी)।

यह बात अपनी जगह शत-प्रतिशत सही है कि आज का श्रमण संघ/साधु-साध्वी समुदाय भोली-भाली जनता को पुण्य का और उसके आश्रय से सांसारिक सुखोपभोग के साधनों की प्राप्ति का लालच देकर दिग्भ्रमित कर रहा है—मात्र अपनी स्वार्थ साधना के लिये, अपनी पूजा कराने और मान कषाय की तुष्टि के लिए। उसमें न तो अध्यात्म है और ना ही परमार्थ साधना है।

दिगम्बरत्व उसी प्रकार एक सैद्धांतिक भाव या आदर्श (doctrinal abstraction) है जैसा कि सम्पूर्ण विरक्ति या वीत-राग भाव। कब और कैसे यह चर्चा भारतीय चिन्तन-दर्शन में प्रवेश कर गई कि साधु के २८ मूल गुणों में नग्नता, स्नान न करना, दन्तधावन न करना और खड़े होकर भोजन करना, जैसी क्रियायें शामिल कर ली गईं—एक गवेषणा का विषय है। जिन भगवान ऋषभदेव ने मानव को सर्वप्रथम सभ्यता का पाठ पढ़ाया हो, स्वयं उपार्जन करना सिखाया हो, विवेक पूर्वक जीने की राह दिखाई हो—वह कैसे उस सबका निषेध कर पुनः उसी अवस्था की ओर ले जायेंगे जहां से मनुष्य ने आदिम वन्य अवस्था से आगे की ओर प्रयाण किया था? —यह चिन्तनीय विषय है।

तन शुद्ध तो मन शुद्ध । अतः मलधारी शरीर में निर्मल मन-भाव-आत्मा कैसे विराज सकती है ? एक श्रावक के लिए आवश्यक है कि वह स्नान करके और स्वच्छ परिधान धारण करके मन्दिर में दर्शन हेतु जाये । अभिषेक-पूजन के लिये भी व्यवस्था है कि मन्दिर में जाकर पुनः शरीर को स्नान द्वारा शुद्ध करे और उस कार्य के लिये अलग रखे हुए धुले हुए स्वच्छ वस्त्र धारण करे । तब मुनि-साधु-साध्वी के लिये सम्पूर्ण अशौच का क्या औचित्य है ? —विचारणीय है ।

यह भी चिन्तनीय विषय है कि भगवान की दिव्य ध्वनि को निरक्षरी-रूप में क्यों कल्पना की गई और उनके भाष्य का सम्पूर्ण एकाधिकार ब्राह्मण गणधरों को क्यों दे दिया गया । भगवान का रुधिर भी श्वेत सूचित किया गया—क्यों ? —जबकि 'खून सफेद हो गया' उसके लिये प्रयोग में आता है जो सर्वथा निर्लज्ज और विवेक-शून्य हो ।

ब्राह्मणों ने जैन धर्म में घुसपैठ करके उसे किस प्रकार भ्रष्ट किया इसका एक उदाहरण है कि उन्होंने महावीर को भी एक ब्राह्मणी के गर्भ से और एक ब्राह्मण के शुक्र-वीर्य द्वारा गर्भ स्थापन से प्रसूत घोषित कर दिया । गर्भ का प्रतिस्थापन क्षत्रयाणि त्रिशला के गर्भ में नैगमेश द्वारा किया गया और इस प्रकार क्षत्रिय त्रिशला एवं सिद्धार्थ महावीर के प्रतिस्थापित माता-पिता (**surrogate parents**) थे । नैगमेश की प्रतिष्ठा 'पुत्र या सन्तान-प्रदायी देवता' के रूप में की गई । इस सबका मूल कारण था महावीर के सामाजिक क्रांति के उद्घोष को व्यर्थ व निर्वीर्य कर देना । यह भारतीय मनीषा पर अपना एकाधिकार जमाये रखने की ब्राह्मण वर्ग की दुरभि-सन्धि थी और जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म के सामाजिक चिन्तन के गुब्बारे की फूंक निकाल देने का एक सुनियोजित प्रयास था जो ईस्वी सन् के प्रारम्भ से निरन्तर चलता रहा, और आज भी जारी है ब्राह्मण वर्ण में से आते रहे साधु वर्ग की कृपा से ।

अकर्म की स्थिति भी एक सैद्धांतिक आदर्श है । कोई भी प्राणी अकर्म की स्थिति में जीवित ही नहीं रह सकता । अकर्म की स्थिति तब ही आयेगी जब उसकी देह प्राण से विमुक्त हो जाय ।

हां, वह सत्कर्म या दुष्कर्म कर सकता है। सत्कर्म ही शुभ कृत्य है जो वह विवेक पूर्वक स्व और पर के हित-सुख के लिये करता/करती है। उससे पुण्य बन्ध होता है तो भी ठीक और न होता हो तो भी ठीक। परन्तु वह भगवान ऋषभदेव से लेकर महावीर तक, सभी तीर्थंकरों ने जो सुख-शान्ति-सदाचारपूर्ण जीवन जीने की राह दिखाई है, उस पर आंख खोलकर चलेगा और सभी प्रकार के मायाचारी, परावलम्बी व आडम्बर पूर्ण आचरण से विरत होगा। ऋषभदेव के साथ कर्मभूमि का प्रादुर्भाव हुआ, अर्थात्, अब जो कुछ भी है वह कर्म-प्रधान है—कार्य-कारण पर आश्रित है।

पंचम काल 'दुषमा' है और उसके बाद छठा काल 'दुषमा-दुषमा' है, और इन दोनों ही कालों में कोई जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता—ऐसा शास्त्रों का कथन है। यदि ऐसा है, तो सत्कर्म की ओर ही प्रेरित होना और प्रेरित करना श्रेय एवं प्रेय है। रोगी के उपचार, दुखी के दुख का निदान, भूखे को काम ताकि वह श्रम करके अपनी नेक कमाई से अपना भरण-पोषण कर सके, और दुष्ट एवं शोषक के चंगुल से मुसीबत में फंसे को त्राण—यदि विवेक पूर्वक सोचा जाय तो यही सब उपादेय, सत्कर्म, शुभ कृत्य, प्रशस्त राग और पुण्यकारी है। सांसारिक सुख-सम्पदा व भोगोपभोगों की उपलब्धि इसका उद्देश्य नहीं है वरन् एक मानव—विवेकशील बुद्धिमान दायित्वपूर्ण व्यक्ति—के रूप में जीवनयापन करने की सार्थकता इसमें निहित है।

हमें इस स्थिति से कभी-कभी खेद का अनुभव होता है कि प्रबुद्ध वर्ग के मनीषी जो जागरूक पत्रकार हैं, विश्वविद्यालय में विज्ञान के प्रोफेसर हैं और महाविद्यालयों में प्राचार्य रह चुके हैं तथा वर्तमान में भी अध्यापक हैं, पुण्य का यथार्थ बताने से कतराते हैं और गतानुगतिक अन्ध-विश्वास/श्रद्धा का पोषण करते हैं।

—डा० शशि कान्त

[उपरोक्त विवेचन लेखक का व्यक्तिगत विचार-मन्थन है और सम्पादक मण्डल के अन्य सदस्यों तथा प्रकाशन संस्था का दायित्व इसमें नहीं है।]

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश
प्रगति प्रतिवेदन वर्ष १९९६–९७

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, की स्थापना सन् १९७६ में उत्तर प्रदेश शासन की 'श्री महावीर निर्वाण समिति' के उत्तराधिकारी स्वरूप एक रजिस्टर्ड सोसायटी के रूप में की गई थी। समिति का १९८७–९१ का प्रगति प्रतिवेदन **शोधादर्श-१५** (नवम्बर १९९१) के पृष्ठ ८१-८६ पर, १९९१-९२ का प्रगति प्रतिवेदन **शोधादर्श-१८** (नवम्बर १९९२) के पृष्ठ ८३-८४ पर, १९९२-९५ का प्रगति प्रतिवेदन **शोधादर्श-२५** (मार्च १९९५) के पृष्ठ ८१-८४ व ८६-८७ पर तथा १९९५-९६ का प्रगति प्रतिवेदन **शोधादर्श-२८** (मार्च १९९६) के पृष्ठ ९३-९७ पर प्रकाशित है। प्रस्तुत प्रगति प्रतिवेदन अप्रैल १९९६ से मार्च १९९७ की अवधि के सम्बन्ध में है।

सदस्यों का वियोग :

इस अवधि में हमारी समिति के सम्माननीय आजीवन सदस्य श्री वीरेन्द्र जैन पहाड़वाले (नजीबाबाद) का निधन हो गया। उनका उन्मुक्त सहयोग हमें समिति के प्रारम्भ से ही निरन्तर प्राप्त होता रहा था। उनके मार्गदर्शन से वंचित होने का हमें दुख है। हम दिवंगत आत्मा की सद्गति और चिरशान्ति की कामना करते हैं।

नये सदस्य :

इस अवधि में श्री विजय जैन (सासनी) को तथा श्री पार्श्व कुमार जैन (लखनऊ) को समिति की आजीवन सदस्यता प्रदान की गई। श्री अजय जैन कागजी, प्रबन्धक, मुन्ने लाल कागजी धर्मशाला, चारबाग, लखनऊ को ३ वर्ष के लिये मानद सदस्यता प्रदान की गई।

आर्थिक प्रगति :

समिति का नियत जमा राशि के रूप में ध्रौव्य फण्ड दिनांक १-४-१९९६ को रु० ८,५७,६०३.३० पै० था जो दिनांक

३१-३-१९९७ को बढ़ कर रु० ९,०५,७३३.३० पै० हो गया। प्राप्ति-व्यय लेखे का आडिट मेसर्स ए० जिन्दल एण्ड कम्पनी, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स, द्वारा किया गया।

शोध पुस्तकालय :

पुस्तकालय में संग्रहीत पुस्तकों का मूल्य एक लाख रुपये से अधिक है। पुस्तकालय में सभी भारतीय धर्मों, दर्शन एवं संस्कृति के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन के उद्देश्य से संग्रह करने का प्रयास किया गया है। जैन धर्म के सभी सम्प्रदायों के मूल ग्रन्थों, शोध प्रबन्धों तथा शोधपरक एवं सामान्य साहित्य का संग्रह करने का प्रयास किया जाता है। लखनऊ, कानपुर एवं अवध विश्व-विद्यालयों के जैन विद्या पर काम कर रहे शोध अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा तथा अन्य जिज्ञासु विद्वानों द्वारा पुस्तकालय का उपयोग किया जाता रहा है। शोध प्रवृत्तियों का निर्देशन डा० शशि कान्त करते हैं। इस वर्ष रु० ११,४००/- मूल्य के ३६४ ग्रन्थों की पुस्तकालय में वृद्धि हुई। पुस्तकालय दिगम्बर जैन मन्दिर (श्री मुन्ने लाल कागजी धर्मशाला), चारबाग, लखनऊ के एक कक्ष में स्थित है जो धर्मशाला प्रबन्ध कमेटी के सौजन्य से निःशुल्क उपलब्ध कराया हुआ है। पुस्तकालय की सोमवार को छोड़कर प्रतिदिन प्रातः ८.०० बजे से १०.३० तक नियमित रूप से खुलने की व्यवस्था है।

शोधादर्श :

जैन विद्या की विभिन्न विधाओं के विद्वानो एवं चिन्तकों की छुटपुट शोध प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्व० डा० ज्योति प्रसाद जी जैन 'विद्यावारिधि' के मार्गदर्शन एवं प्रधान सम्पादकत्व में समिति द्वारा इस चातुर्मासिक शोध-पत्रिका का शुभारम्भ फरवरी, १९८६ में किया गया था। जून १९८८ में उनके निधन के उपरान्त उनके योग्य सुपुत्र डा० शशि कान्त और श्री रमा कान्त जैन इस शोध पत्रिका के सम्पादन का भार संभाले हैं। प्रधान सम्पादक का उत्तरदायित्व श्री अजित प्रसाद जैन वहन कर रहे हैं। पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित की जाती है और अब तक हम ३० अंक प्रकाशित

कर चुके हैं। वर्ष १९९६ में प्रकाशित अंक २८, २९ व ३० में ३४१ पृष्ठों की उपयोगी सामग्री की समाज के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा व्यापक सराहना हुई है।

तीर्थंकर छात्र सहायता कोष :

वर्ष १९९६-९७ में ३२ छात्र-छात्राओं को रु० १०,२५८.०० पै० की अध्ययन सहायता प्रदान की गई। छात्र-छात्रायें कक्षा सप्तम से स्नातकोत्तर स्तर तक के थे। इस कोष का संचालन श्री नरेश चन्द्र जैन उप मंत्री, महामंत्री की देख-रेख में, करते हैं।

महावीर जन कल्याण निधि :

वर्ष १९९६–९७ में ९ असहाय महिलाओं और एक रोगी पुरुष को रु० ७,६५३.०० पै० की सहायता प्रदान की गई। इस निधि का संचालन डा० शशि कान्त संयुक्त मन्त्री, महामन्त्री की देख-रेख में करते हैं।

समिति की नियमावली में संशोधन :

समिति की नियमावली में निम्नलिखित संशोधन किये गये—

(१) नियम ९ (क) में उल्लिखित पदनाम 'प्रधान मन्त्री' को 'महामन्त्री' कर दिया गया, और नियमावली में जहाँ भी 'प्रधान मन्त्री' उल्लिखित रहा उसके स्थान पर 'महामन्त्री' प्रति-स्थापित कर दिया गया ;

(२) नियम ९ (ख) में प्रदत्त शक्ति के अधीन बढ़ाये गये 'निदेशक, पुस्तकालय एवं साहित्य प्रकाशन, तथा सम्पादक शोधादर्श' के पद को 'संयुक्त मन्त्री' पदनामित किया गया, और नियम ९ (क) व १३ में इस पद का समावेश कर लिया गया ; तथा

(३) नियम १० में निम्नलिखित अंश जोड़ दिया गया—

'और प्रतिबन्ध यह भी है कि प्रबन्ध समिति के निर्वाचन में केवल वे ही सदस्य भाग ले सकेंगे जिनका सदस्यता काल निर्वाचन की तिथि को एक वर्ष की अवधि पूरा कर चुका होगा।'

प्रबन्ध समिति का निर्वाचन :

समिति की साधारण सभा की दिनांक २९-१२-१९९६ की

बैठक में नियम ९ व १० के अन्तर्गत आगामी ३ वर्ष के लिये समिति के पदाधिकारियों और प्रबन्ध समिति के सदस्यों का विधिवत निर्वाचन सर्वसम्मति से निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ—

अध्यक्ष—श्री सुमेर चन्द जैन पाटनी

उपाध्यक्ष—(१) श्री लून करण नाहर, (२) श्री कन्हैया लाल जैन

महामन्त्री—श्री अजित प्रसाद जैन

संयुक्त मन्त्री—डा० शशि कान्त

उप मन्त्री—(१) श्री नरेश चन्द्र जैन, (२) श्री रमा कान्त जैन

कोषाध्यक्ष—श्री बिजय लाल जैन

सदस्य, प्रबन्ध समिति—

(१) श्री कैलाश भूषण जिन्दल, (२) डा० विनय कुमार जैन, (३) श्री हंस राज जैन, (४) श्री नेमि चन्द जैन, (५) श्री सन्दीप कान्त जैन, (६) श्री आदित्य जैन, (७) श्री रांज कुमार जैन, (८) श्री महाबीर प्रसाद पाटनी, (९) डा० पूर्ण चन्द्र जैन, (१०) श्री बिमल चन्द जैन, (११) श्री अजय जैन कागजी।

आयकर से छूट :

आयकर अधिनियम की धारा १२ के अन्तर्गत समिति का रजिस्ट्रेशन करा लिया गया है। आयकर निर्धारण वर्ष १९९५–९६ और १९९६–९७ के लिये आयकर विवरणी दाखिल कर आयकर से छूट (Non-Assessable) प्राप्त कर ली गई है।

विवेच्य वर्ष में समिति की विभिन्न प्रवृत्तियां प्रगतिशील रहीं। सोसायटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट के अन्तर्गत समिति के रजिस्ट्रीकरण का नवीनीकरण २९-३-२००१ तक की अवधि के लिये कराया जा चुका है। नव निर्वाचित पदाधिकारियों एवं प्रबन्ध समिति के सदस्यों की सूचना भी विधिवत रजिस्ट्रार, सोसायटीज, उ० प्र०, को दे दी गई है तथा नियमावली के संशोधन भी अनुमोदनार्थ उन्हें भेज दिये गये हैं।

समिति के अध्यक्ष श्री सुमेर चन्द जैन पाटनी जी तथा

(शेष पृष्ठ १५० पर)

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र० : प्राप्ति-व्यय विवरण अप्रैल १९९६—मार्च १९९७

सम्परीक्षित लेखा

प्राप्ति		व्यय	
प्रारम्भिक शेष :		शोध पुस्तकालय	६,२१६.६५
(१) रिजर्व फण्ड	८,५७,६०३.३०	शोधादर्श—प्रकाशन एवं वितरण	१६,८२०.००
(२) बैंक बचत खाता	७,६६२.४४	तीर्थंकर छात्र सहायता कोष	१०,२५८.००
(३) नकद राशि	२,६१०.८६	महावीर जन कल्याण निधि	७,६५३.००
	८;६७,८७६.६०	आडिट फीस	२,६००.००
समिति—सदस्यता शुल्क आदि	१,७५७ ००	योग	४६,५४७.६५
शोधादर्श—ग्राहक शुल्क आदि	१,४२०.००	अन्तिम शेष :	
शोध पुस्तकालय—सदस्यता शुल्क व जमानत	३६०.००	(१) रिजर्व फण्ड	९,०५,७३३.३०
बैंक ब्याज	९६,६७७.६७	(२) बैंक बचत खाता	१३,३६२.११
अन्य दान आदि	३६४.००	(३) नकद राशि	२,८१२.२१
			९,२१,९०७.६२
कुल योग	९,६८,४५५.२७	कुल योग	९,६८,४५५.२७

इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की पुण्य तिथि

बुधवार ११ जून, १९९७, को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान इतिहास-मनीषी, विद्यावारिधि स्व० डा० ज्योति प्रसाद जैन की नवम पुण्यतिथि मनाई गई। श्रद्धेय डाक्टर साहब का पुनीत स्मरण करने और उन्हें श्रद्धा-सुमन अर्पित करने हेतु प्रबुद्ध चिन्तक एवं विद्वान लेखक-सम्पादक श्री अजित प्रसाद जैन की अध्यक्षता में नगर के प्रबुद्धजनों की एक गोष्ठी हुई। साथ ही प्रातिभ स्वरों के धनी १५ कवियों द्वारा नगर के प्रख्यात काव्य-मनीषी डा० परमानन्द जड़िया के सानिध्य में श्रद्धेय डाक्टर साहब को काव्य-सुमन अर्पित किये गये। गोष्ठी का संचालन श्री रमा कान्त जैन ने किया तथा समागतवृन्द के प्रति आभार डा० शशि कान्त ने व्यक्त किया।

श्रद्धेय डा० साहब के चित्र तथा सरस्वती देवी की मूर्ति पर माल्यार्पण और उनके सम्मुख दीप प्रज्वलन करके तथा मंगलाचरण स्वरूप डाक्टर साहब के प्रिय स्तोत्र 'महावीराष्टक' तथा स्वयं उनके द्वारा रचित 'वीतराग स्वरूपम्' और 'जय महावीर नमो' के सस्वर सामूहिक पाठ से गोष्ठी प्रारम्भ हुई। डा० पूर्ण चन्द्र जैन, डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तौगी, श्री राजेन्द्र कुमार जैन और अध्यक्ष श्री अजित प्रसाद जैन ने डाक्टर साहब के व्यक्तित्व और कृतित्व सम्बन्धी अपने भाव-भीने संस्मरण सुनाते हुए उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की और

(पृष्ठ १४८ का शेष)

सहयोगीगण विशेषकर श्री लून करण नाहर, श्री कन्हैया लाल जैन, श्री बिजय लाल जैन, डा० शशि कान्त, श्री नरेश चन्द्र जैन और श्री रमा कान्त जैन के प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हूँ कि उन्होंने समिति की विभिन्न प्रवृत्तियों को सुचारू रूप से संचालित करने में मुझे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

—अजित प्रसाद जैन
महामन्त्री

यह अभिलाषा अभिव्यक्त की कि उनकी विचारधारा और लेखों आदि का संकलन शीघ्र प्रकाशित किया जाय। श्री भगवान भरोसे जैन ने डाक्टर साहब सम्बन्धी संस्मरण सुनाते हुए उनको प्रिय रहा आध्यात्मिक पद 'जियरा तू काह सो नेह करे' गाया।

काव्य गोष्ठी का प्रारम्भ श्री रमा कान्त जैन ने माँ सरस्वती से इस विनती के साथ किया—

बिनती इतनी अम्ब मेरी, इतना तू उपकार कर दे।
जगत् ज्योतिर्मय कर सकूँ, लेखनी में धार धर दे॥

तदनन्तर श्री प्रकाश चन्द्र 'दास' ने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए पढ़ा—

तेरी पुण्यतिथि पर 'ज्योति' करते हैं हम तुझको याद।
तेरे सृजित साहित्य के द्वारा, करते हैं तुमसे संवाद॥

श्री नारायन प्रकाश 'नजर' ने गज़ल गायी—

पीड़ा ने मुझको चाहा, जी भर उसने प्यार किया।
इतिहास की भूलों में, सुधियों का उपहार दिया॥

श्री घनानन्द पाण्डेय ने आनन्द घन बरसाते हुए गीत गाया—

मन ही मन रोया करता हूँ।
अपने में ही खोया करता हूँ॥

डा० महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' ने अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि—

प्रिय तुम्हारी वन्दना करता हृदय है

तथा रचना 'प्रश्न सभी उठते अन्तर से' प्रस्तुत की।

डा० अजय प्रसून ने 'सच' में आस्था रखने वाली अपनी चिन्तनदायक गीतिका प्रस्तुत की—

आदमी का सच कभी हारा नहीं।
क्योंकि सच टूटा हुआ तारा नहीं॥

कोटा से आये इंजी० राजीव कान्त ने जीवन दर्शन के सम्बन्ध में अपनी चिंतनप्रद रचना "मैं–भटकन से सुलझन तक" प्रस्तुत की।

श्रीमती मंजुलता तिवारी 'सुशोभिता' ने अपनी मनोवेदना इस गीत में अभिव्यक्त की—

हर आहट पर मन चौंक उठा।
दरवाजा फिर भी बंद मिला॥

हास्य-व्यंगकार श्री आदित्य चतुर्वेदी ने अपनी हास्य-व्यंग रचना—

मैंने पत्नी से कहा प्रधानमंत्री बनना ।
मगर राष्ट्रपति मत बनना ।
वरना राष्ट्र-पत्नी कहलाओगी ।।

सुनाकर सुधि श्रोतागण का मन मुग्ध किया ।

कण्ठ के धनी डा० रवि अवस्थी ने श्रद्धेय डाक्टर साहब के प्रति मुक्तक पढ़ने के उपरांत अपना गीत—

स्वप्न की चादर लपेटे, चाँदनी को अंक भेंटे ।
मैं पवन के पालने पर, रात भर झूला किया ।

गाकर सबको भाव विभोर किया ।

युवा कवि श्री अनन्त प्रकाश तिवारी ने अपनी व्यंग रचना—

कौवों-गिलहरियों ने बांट लिये खेत ।
खेतिहर के भाग्य वही मुट्ठी भर रेत ।।

पढ़कर सबको मोहा ।

जाने-माने कवि डा० वेद मिश्र ने अपनी व्यंग रचना 'जमाने तेरी बलिहारी' में जमाने पर चोट करते हुए कहा—

बिन पानी मुरझाये पादप, काँटे जल पीते ।
नागफनी के पहरे में तुलसी बिरवे जीते ।।

श्री गौरीश श्रीवास्तव ने सामयिक समीक्षात्मक दोहे सुनाकर वाह-वाही लूटी ।

डा० शशि कान्त ने अपनी गीति-रचना—

स्मृति को झंकृत कर दे ।
ऐसा राग सुनाता जा ।।

सुनाई ।

अन्त में, गोष्ठी के सुमेरु डा० परमानंद जड़िया ने श्रद्धेय डाक्टर साहब को अपनी विनयाञ्जलि अर्पित कर, कविता की परिभाषा करते हुये बताया, "कविता मात्र शब्द नहीं है, वरन् संवेदना के वे भाव हैं जो छंदबद्ध होकर शब्द को सार्थकता प्रदान करते हैं ।" उनके द्वारा छंदों के मधुर गायन के साथ गोष्ठी का समापन हुआ ।

—रमा कान्त जैन

रिपोर्ट

लखनऊ में 'जैन विद्या के विविध आयाम' पर संगोष्ठी

उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान, लखनऊ, द्वारा महावीर जयन्ती के अवसर पर "जैन विद्या के विविध आयाम" विषय पर एक द्वि-दिवसीय संगोष्ठी दिनांक २० एवं २१ अप्रैल, १९९७, को जयशंकर प्रसाद सभागार, राय उमानाथ बली प्रेक्षागृह, कैसरबाग, में आयोजित की गयी। संगोष्ठी का उद्घाटन उत्तर प्रदेश के संस्कृति, खेलकूद एवं युवा कल्याण मन्त्री श्री मारकण्डेय चन्द द्वारा किया गया। अध्यक्षता श्री एम० सी० जोशी, पूर्व महानिदेशक भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, द्वारा की गयी। डा० सागर मल जैन, निदेशक, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, ने संगोष्ठी का विषय-प्रवर्तन किया। संस्थान के अध्यक्ष और संस्कृति विभाग के सचिव श्री शैलेश कृष्ण और संस्थान के उपाध्यक्ष तथा संस्कृति विभाग के निदेशक डा० अनूप चन्द्र पाण्डेय द्वारा अतिथियों/विद्वानों का स्वागत किया गया। डा० (श्रीमती) राका जैन ने मंगलाचरण किया।

संगोष्ठी में दिल्ली, लाडनूं (राजस्थान), जयपुर, हैदराबाद, भुबनेश्वर, भोपाल, आरा (बिहार), वाराणसी, गोरखपुर और बरेली से पधारे २१ विद्वानों ने तथा स्थानीय ११ विद्वानों ने भाग लिया और अपने शोध-पत्र प्रस्तुत किए। संगोष्ठी ६ सत्रों में सम्पन्न हुई। सत्रों की अध्यक्षता डा० सागर मल जैन, डा० मोहन चन्द्र जोशी, डा० आनन्द कृष्ण और डा० किरण कुमार थपलियाल ने की।

समापन सत्र में डा० मारूति नन्दन प्रसाद तिवारी ने संक्षिप्त समीक्षा रखी। सभी वक्ताओं के प्रतिनिधि के तौर पर डा० रत्न चन्द्र अग्रवाल ने अपनी बात कही। संस्थान के कार्यवाहक निदेशक डा० अरविन्द कुमार श्रीवास्तव ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

कुछ विशिष्ट शोध-पत्र निम्नवत थे :—

१. डा० रत्नचन्द्र अग्रबाल (जयपुर) : जोधपुर संग्रहालय में वि० संवत १२३७ की महिषासुर मर्दिनी की एक अभिलिखित खण्डित प्रतिमा है, जैन मत में उन्हें सच्चिका देवी के रूप में

अपनाया गया है। जूनागढ़ के सच्चिका देवी के मन्दिर में भी ऐसा ही शिलालेख उत्कीर्ण है। जीवन्त स्वामी (आदिनाथ) की चोरी गयी प्रतिमा का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि संग्रहालयों में हमें यह पकड़ बनाए रखनी होगी कि प्रतिमा कहीं बदल न जाए या गायब न हो जाए।

२. डा० हरिश्चन्द्र दास (पुरी) : जगन्नाथ, अवन्ति और हाथीगुम्फा कला के चित्र दर्शाते हुए उड़ीसा की प्रारम्भिक काल की जैन कलाकृतियों के बारे में बताया।

३. डा० ए० एल० श्रीवास्तव (इलाहाबाद) : सिक्कों पर अष्ट मांगलिक चिन्हों की चर्चा की। "त्रिछत्र" जैन के साथ सांची आदि की बौद्ध कला में भी दिखलाई पड़ता है। भूटान के आधुनिक काल के सिक्कों पर अंकित मीन, शंख, पद्म, चक्र और श्रीवत्स के चिन्हों का भी उन्होंने उल्लेख किया।

४. डा० अमर सिंह (लखनऊ) : मध्यकालीन भारतीय कला में नेमिनाथ।

५. डा० (श्रीमती) कमलागिरि (वाराणसी) : अपने सर्वेक्षण के आधार पर वाराणसी के घाटों, मन्दिरों, दीवारों, तालाबों और भवनों का उल्लेख करते हुए काशी की जैन मूर्ति कला के ऊपर प्रकाश डाला। इस सन्दर्भ में उन्होंने प्रह्लाद घाट के मन्दिर और भेलूपुर के पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर का खास तौर से जिक्र किया।

६. डा० (श्रीमती) ऊषा तिवारी (वाराणसी) : मथुरा की जिन एवं बुद्ध प्रतिमाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए कहा कि बुद्ध के मस्तक पर उष्णीश (बालों का जूड़ा) और जिन के वक्षस्थल पर श्रीवत्स के चिन्ह के प्रयोग से ही इनमें विभेद किया जा सकता है। अन्यथा मुख, शारीरिक बनावट, प्रभामण्डल, एवं पीठिका के साथ ही मूर्तियों पर लिखित अभिलेखों में भी धार्मिक विविधता के बाबजूद कई समानताएं हैं।

७. डा० आनन्द कृष्ण (वाराणसी) : जैन चित्र कला पर प्रकाश डालते हुए कहा कि **विष्णु धर्मोत्तर पुराण** में कई ऐसी बातें

कही गयी हैं जिनका कभी किसी ने उल्लेख नहीं किया । इस सन्दर्भ में उन्होंने उड़ीसा के ताड़पत्र की अब तक कायम चित्रशैली, ताम्र पत्रों, खजुराहो के मन्दिर के कक्षासन और रायचूर के दुर्ग का जिक्र करते हुए कहा कि जैन अनुभव और परानुभव पर सीमा को तोड़ कर अध्ययन करने की जरूरत है ।

८. डा० कमलेश जैन (दिल्ली) : **आप्तमीमांसा** एवं **लघीय-स्त्रय** में प्राप्त सन्दर्भो का अध्ययन ।

९. डा० शशि कान्त (लखनऊ) : भुबनेश्वर के समीप स्थित उदयगिरि पहाड़ी पर हाथीगुम्फा के १७ पंक्तियों में उत्कीर्ण शिला-लेख के सम्बन्ध में बताया कि लगभग १७२ वर्ष ईस्वी पूर्व में खारवेल ने अपने शासन काल के १३वें वर्ष में इसे उत्कीर्ण कराया था । इस शिलालेख में तीन पूर्वगत घटनाओं के वर्ष का उल्लेख है । उक्त वर्ष ५२७ ई० पू० में प्रारम्भ महावीर निर्वाण संवत में दिये गये हैं । शिलालेख १६५ वी० स० (३६२ ई० पू०) से व्युच्छित्ति के प्राप्त हो रही जैनों की मुख्य श्रुत के वाचन हेतु आयोजित श्रमणों के सम्मेलन को अभिलिखित करता है ।

१०. श्रमणी चैतन्य प्रज्ञा (लाडनू) : रंग चिकित्सा पद्धति **उत्तराध्ययन** के सन्दर्भ में ।

११. श्री रमा कान्त जैन (लखनऊ) : भारतीय इतिहास के लेखन में जैन सामग्री की उपादेयता ।

१२. डा० पाण्डेय (राजस्थान) : महावीर के नाम ।

१३. डा० अशोक कुमार सिंह : कर्मवाद ।

१४. डा० (श्रीमती) शशिबाला श्रीवास्तव : ऋषभदेव संबंधी **भागबत पुराण** के सन्दर्भ ।

डा० विजय कुमार जैन, डा० (श्रीमती) राका जैन, डा० भागचन्द जैन 'भागेन्दु' (भोपाल) और डा० फूलचन्द जैन 'प्रेमी' (वाराणसी) अन्य विशिष्ट विद्वान थे, जिन्होंने अपने शोध पत्र प्रस्तुत किये ।

—डा० अरविन्द कुमार श्रीवास्तव

साहित्य सत्कार

महापुराण-कथाकुञ्ज, लेखक-डा० कस्तूरचन्द सुमन ; प्रकाशक-जैनविद्या संस्थान, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी-३२२२२० (राजस्थान) ; पृष्ठ ४४ + ८ + आवरण ; मूल्य रु० १०.००

आचार्य जिनसेन (लगभग ७७०-८५० ई०) द्वारा संस्कृत में प्रणीत **आदि पुराण**, भाग १ व २, तथा उनके शिष्य आचार्य गुण-भद्र द्वारा पूरक रचना के रूप में प्रणीत संस्कृत **उत्तर पुराण** को मिलाकर सामान्यतया **महापुराण** नाम से अभिहित किया जाता है। जैनविद्या संस्थान श्री महावीर जी के प्रभारी एवं शोधक बिद्वान डा० कस्तूरचन्द सुमन ने **महापुराण** में आई १८ अवान्तर कथाओं को नया कलेवर प्रदान कर **महापुराण-कथाकुञ्ज** को सुबोध हिन्दी में सजाया-संवारा है। अपनी प्रस्तावना में डा० सुमन ने इन कथाओं को आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेदिनी और निर्वेदिनी नामक चार वर्गों में वर्गीकृत करते हुये इन्हें मात्र मनोरंजन का साधन नहीं, अपितु पारलौकिक और इहलौकिक अभ्युदय में सहायक बताया है। इस कुञ्ज में संजोये १८ कथा-कुसुमों में से पहले ४ **आदिपुराण** भाग २ से और शेष १४ **उत्तर पुराण** से हैं। आक्षेपिणी अर्थात् स्वमत स्थापिनी वर्ग की प्रतिनिधि १, विक्षेपिणी अर्थात् मिथ्यामत खण्डनी वर्ग की १०, संवेदिनी अर्थात् पुण्यफलदर्शिनी वर्ग की ४ और निर्वेदिनी अर्थात् वैराग्योत्पादिनी वर्ग की प्रतिनिधिस्वरूप ३ कथायें दी गई हैं।

कथा साहित्य में रूचि रखने वाले श्रृद्धालु जैन हिन्दी पाठकों के लिये तो यह कथा-संग्रह रोचक है ही, प्राचीन कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने वाले विद्वानों के लिये भी यह पठनीय एवं उपादेय है। 'अभिमानी दुःख भोगता' कहानी के कथानक का कुछ भाग रक्षाबन्धन की प्रचलित जैन कथा से साम्य रखता है। 'वैर की जड़ धन' कहानी **पन्चतन्त्र** में पाई जाने वाली धर्मबुद्धि-पापबुद्धि कहानी से कुछ मिलती-जुलती है। कुछ अन्य कहानियों में भी अन्यत्र पाई जाने वाली कहानियों से कहीं-कहीं कुछ साम्य दृष्टिगोचर होता है।

जैन भजन सौरभ—संकलनकर्ता एवं अनुवादक—डा० कमलचन्द सोगाणी; प्रकाशक–जैनविद्या संस्थान, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी-३२२२२० (राजस्थान); पृष्ठ १०४ + १४ + ६; मूल्य रु० १०/-

जैनविद्या संस्थान समिति के विद्वान संयोजक डा० कमलचन्द सोगाणी ने **द्यानत पद संग्रह, भूधर विलास, बुधजन विलास, दौलत जैन पद संग्रह, भागचन्द पद संग्रह** तथा **हिन्दी पद संग्रह** से १०० भजनों का चयन करके उन्हें हिन्दी गद्यानुवाद सहित सर्वोदय पुस्तक-माला के पुष्प-११ में प्रस्तुत किया है। इस संकलन में आगरा निवासी कवि द्यानतराय (सन् १६७६–१७२६ ई०) के २३ और कवि भूधरदास (सन् १६९३-१७४९ ई०) के १८ भजन ब्रजभाषा में; जयपुर निवासी कवि बुधजन (सन् १७७३-१८३८ ई०) के २० भजन ढूँढारी मिश्रित ब्रजभाषा में; हाथरस निवासी कवि दौलतराम (सन् १७९८-१८६६ ई०) के ब्रज मिश्रित खड़ी बोली में २४ भजन; तथा ईसागढ़ (ग्वालियर) के आध्यात्मिक चिन्तक कवि भागचन्द के पुरानी हिन्दी में १६ भजन, संग्रहीत हैं। भागचन्द यद्यपि इन कवियों में सबसे अर्वाचीन हैं परन्तु उनका समय-निर्देश मात्र उन्नीसवीं शताब्दी किया गया है जो खटकता है; उनका सही समय दिया जाना अभीष्ट था जबकि अन्य चार पूर्ववर्ती का समय दिया गया है। इस संकलन का उद्देश्य डा० सोगाणी के शब्दों में "मनुष्यों/पाठकों में जिन भक्ति/प्रभु भक्ति को सघन बनाना है जिससे वे अपने नैतिक-आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ प्राणिमात्र के कल्याण में संलग्न हो सकें।" ज्ञानवर्द्धक प्रस्तावना और सरल हिन्दी गद्य में अनुवाद से समन्वित यह भजन-संग्रह अध्यात्म-प्रेमी श्रृद्धालु जनों के मन को भायेगा।

मोक्ष मार्ग प्रदीप—संकलनकर्ता एवं टीकाकार–श्री सरनाराम जैन (सहारनपुर); प्रकाशक—श्री दिगम्बर जैन साहित्य प्रकाशन समिति, ३३२, स्कीम नं० १०, अलवर-३०१००१; पृष्ठ ८० + १६ + आवरण + चित्र; मूल्य १५ रुपये

आध्यात्मिक सन्त आचार्य कुन्दकुन्द (ई० पू० ८ से ई० सन् ४४) के प्राकृत ग्रन्थ **समयसार, प्रवचनसार** और **पंचास्तिकाय संग्रह** को अपनी संस्कृत टीकाओं आदि के द्वारा प्रकाश में लाने वाले तथा संस्कृत में **तत्त्वार्थसार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय** आदि ग्रन्थों के रचनाकार कहे जाने वाले आचार्य अमृत चन्द्र सूरि (१०वीं शती ईस्वी) के ग्रन्थों, आचार्य कुन्दकुन्द के **नियमसार**, मुनि नेमिचन्द्र कृत **द्रव्य संग्रह** (१२वीं शती ईस्वी), पं० टोडर मल (१८वीं शती ईस्वी) के **मोक्ष-मार्ग प्रकाश** तथा तद्विषयक अन्य ग्रन्थों के आधार पर स्वाध्याय-प्रेमी अध्यात्म-रसिक विद्वान स्व० पं० सरनाराम जी ने प्रस्तुत कृति में मोक्षमार्ग (सम्यग्दर्शन) का ४१ प्रकरणों में हिन्दी में प्रतिपादन किया है। यह एक प्रकार से उनकी मौलिक कृति है। उन्होंने निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता को ही मोक्षमार्ग कहा है तथा मोक्षमार्ग के सब पहलुओं पर विद्वत्तापूर्ण सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया है। अध्यात्म-रसिक श्रृद्धालु जनों के लिये यह पठनीय एवं संग्रहणीय है।

धर्म ज्ञान विकास (प्रथम व द्वितीय भाग), लेखक—मुनि श्री कुमुदनन्दी; प्रकाशक—मुनि श्री कुमुदनन्दी जी महाराज ग्रन्थ प्रकाशन समिति, मण्डी, सोनीपत-१३१००१; पृष्ठ ११ + ६१ + ८ + ४८ + ४ + आवरण

पूर्वाचार्यों की कृतियों से सामग्री एकत्रित कर आबालवृद्ध सभी के धार्मिक ज्ञान के विकास हेतु ६१ पृष्ठों के प्रथम भाग में ४९५ प्रश्नोत्तर तथा ४८ पृष्ठों के द्वितीय भाग में १०८ + १०० प्रश्नोत्तर अपने ज्ञान के आधार पर युवा मुनि श्री ने इस पुस्तक में प्रस्तुत किये हैं। साथ ही, देवदर्शन विधि और उसका महत्त्व, कुछ आरती, भजन, कविताओं के साथ मुनि श्री का जीवन परिचय तथा उनके दो व उनके दीक्षा गुरू का एक चित्र दिया हुआ है। जैन धर्म का प्राथमिक ज्ञान प्रदान करने की दिशा में यह कृति एक सत्प्रयास कही जायेगी। किन्तु इसमें मुनि श्री द्वारा कदाचित् अपने संस्कारों और अपनी शिक्षा के प्रभाववश, कहीं-कहीं कुछ ऐसे कथन

भी कर दिये गये हैं जो हम अल्पज्ञ की बुद्धि के तो परे हैं यथा उनके यह कथन कि—"जिन मन्दिर जाते समय खाली हाथ कभी न जायें अर्थात् कुछ-न-कुछ वस्तु चढ़ाने के लिये अवश्य ले जावें अन्यथा दरिद्रता का सूचक होगा।", "बिना जनेऊ के गृहस्थों को पूजा, दान या जिनेन्द्र प्रभु को स्पर्शन करने का भी अधिकार नहीं है। यज्ञोपवीत, धारी ही सत्कर्मों को कर सकता है।", तथा "पूजन गृहस्थ का प्रथम आवश्यक है।" सिंहपुरी और चन्द्रपुरी को भी उन्होंने बनारस (वाराणसी) से अलग समझा है। कहीं-कहीं रह गई मुद्रण त्रुटियां भी भ्रामक स्थिति उत्पन्न कर देती हैं, यथा—पृष्ठ १३ पर छपा प्रश्न ९० का उत्तर–"सच्चे देव शास्त्र गुरु पर श्रद्धा न रखने को सम्यग्दर्शन कहते हैं।" अतः पाठकों को इस पुस्तक का पाठन विवेक के साथ करना उचित होगा।

मुनि श्री का परिचय, उनके दो भव्य चित्र और पुस्तक के प्रारम्भ में तथा मध्य में दी गई इन ३४ वर्षीय महाराज की आरतियों आदि से यह बात भी स्पष्ट है कि महाराज ने जिस सद्उद्देश्य को लेकर अल्पवय में दीक्षा धारण की उसे वह चरितार्थ कर रहे हैं, अर्थात् वह आत्म कल्याण (आत्मा का नहीं, अपना कल्याण) कर रहे हैं और पूज्य हो चले हैं। वैसे भी—

आत्मा का चिन्तन करते-करते जो हो रहे आत्म-प्रचार में लीन।
ऐसे साधु आज जग में कहलाते हैं सच्चे और शालीन॥

हमारा भोजन, मुक्तक एवं सत्य कथायें, लेखक-पं० कैलाश चन्द्र जैन 'पंचरत्न' ; सौजन्य से–श्री उधमीराम जी अग्रवाल, नागेश इण्टरप्राइजेज, ४३/१३२ नवल किशोर रोड, लखनऊ-२२६००१; पृष्ठ ३०

स्व० श्री सुधेश जैन, नागौद, की पशुवध विरोधी एक रचना 'पहुंचा देना दिल्ली की सरकार तक' को छोड़कर शेष सम्पूर्ण पुस्तिका पं० पंचरत्न जी की कृति है। शाकाहार पर बल देने वाली, क्षमाभाव अपनाने को प्रेरित करने वाली तथा मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों से युक्त १२ प्रेरक प्रसंगों को संजोये यह लघु पुस्तिका

पठनीय और संग्रहणीय है ।

कर्मभूमि आर्ट्स ग्रुप स्मारिका—२६ अप्रैल, १९९७, को राय उमानाथ बली प्रेक्षागृह, लखनऊ, में उत्तर प्रदेश संस्कृति विभाग के सौजन्य से कर्मभूमि आर्ट्स ग्रुप द्वारा भगवान महावीर के जीवन प्रसंगों को लेकर श्रीमती सुधा जिन्दल द्वारा लिखित नाटक 'करुणावतार' का मंचन हुआ था । उस अवसर पर प्रकाशित-वितरित यह २० पृष्ठीय लघु स्मारिका नाटक की रूपरेखा, पात्र-परिचय और कर्मभूमि आर्ट्स ग्रुप के अध्यक्ष के दो शब्द व उसके सचिव श्री प्रभूदयाल अम्बुज के विचार तथा विभिन्न विज्ञापनों के साथ-साथ 'करुणा के अवतार महावीर' का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करने वाला मनीषी विद्वान डा० शशि कान्त का आलेख तथा प्रभाकर माचवे की काव्याञ्जलि 'तुम महावीर थे' संजोये हुए है ।

करमदंडा की उपलब्धियाँ, संकलनकर्ता—डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी; प्रकाशक—रामकथा संग्रहालय, अयोध्या (संस्कृति विभाग, उ० प्र०); आवरण सहित पृष्ठ १६; १८ जनवरी, १९९७

आर्ट पेपर पर इस सचित्र लघु पुस्तिका में रामकथा संग्रहालय, अयोध्या, के निदेशक (अब निवर्तमान), पुरातत्त्वविद् डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी ने अब तक गुप्तकालीन समझे जाने वाले अयोध्या से लगभग ३५ कि० मी० दूर रायबरेली मार्ग पर बारुन बाजार के निकट स्थित **करमदंडा** (करमडाड़ा) स्थान को उसके समीपवर्ती टीले पर उत्खनन से प्राप्त कलाकृतियों के आधार पर पूर्व-कुषाण काल का सिद्ध किया है ।

रामकथा संग्रहालय, अयोध्या—कला-सम्पदा—संक्षिप्त परिचायिका-अद्यतन, संकलनकर्ता—श्री मानस प्रसाद, वीथिका सहायक; प्रस्तोता-निदेशक, रामकथा संग्रहालय, अयोध्या; प्रकाशक—संस्कृति विभाग, उ० प्र०; पृष्ठ ७२+४+आवरण+१० चित्र; मार्च १९९७

प्रस्तुत प्रकाशन में राम कथा संग्रहालय, अयोध्या, में वर्ष १९८७-८८ से वर्ष १९९६-९७ तक उसके चित्रकला विभाग, वस्त्र अनुभाग, मुद्रा विभाग और पुरातत्त्व विभाग में संगृहीत ९०९ कला-

कृतियों की सूची दी गयी है। इन कलाकृतियों में से १२१ प्रस्तर की, २३२ मिट्टी की, ३ हाथी दांत की, २२ काष्ठ की और ४६ धातु की हैं, तथा १३१ लघु चित्र, २२ विविध कलाकृतियां, १०० हस्तलिखित पोथियां, २५ वस्त्र और २०७ पुराने सिक्के हैं। संग्रहालय के निदेशक (अब निवर्तमान) डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी के मार्गदर्शन में बन कर प्रकाशित यह सूची-पत्र राम कथा के रसिक कला-मर्मज्ञों को संग्रहालय की कला-सम्पदा से परिचित कराने के लिये काफी उपयोगी है। इसके अवलोकन से विदित होता है कि उक्त संग्रहालय में २ जैन कलाकृतियां भी हैं—(१) आदिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में बलुआ पत्थर की १९वीं शती ई० की मूर्ति, और (२) जैन अम्बा देवी की बलुआ पत्थर की १२वीं शती ईस्वी की मूर्ति।

अयोध्या को पाँच तीर्थंकरों (**आदिनाथ—ऋषभदेव, अजितनाथ, अभिनन्दन नाथ, सुमतिनाथ और अनन्तनाथ**) की जन्मस्थली होने का श्रेय है और इस प्राचीन जैन तीर्थक्षेत्र पर उपलब्ध जैन कला सम्पदा का समुचित प्रतिनिधित्व इस राजकीय संग्रहालय में, जो मुख्यतया राम को समर्पित होते हुए भी अन्य देवी-देवताओं को भी स्थान दिये है, होना अभीप्सित है। यह भी उल्लेखनीय है कि राम केवल हिन्दुओं के ही नहीं हैं। जैन परम्परा के त्रिषष्ठिशलाका पुरुषों में उनकी आठवें बलभद्र के रूप में गणना है और उनके चरित को लेकर प्राचीन काल से ही प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि भाषाओं में रामायण के जैन रूप की रचना होती आई है यथा—विमलार्य (ई० पू० ३) कृत प्राकृत **पउम चरियम्**, रविषेण (६७६ ई०) रचित संस्कृत **पद्म चरित्र** (पद्म पुराण), स्वयम्भू (८०० ई०) का **पउम चरिउ**, आदि। हाल ही में श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा, से मुनि केशराज कृत सचित्र जैन रामायण (**राम-यशो-रसायन-रास**) प्रकाशित हुई है। संग्रहालय के अधिकारियों को चाहिये कि राम से सम्बन्धित अन्य परम्पराओं की सामग्री की भी खोज-खबर लेकर उन्हें अपने यहां स्थान देकर संग्रहालय को व्यापक बनायें।

JINAMANJARI, Vol. 15, No. 1, April 1997, Editor-in-Chief Dr. S. A. Bhuvanendra Kumar; Brahmi Jain Society, 1331 Clinton Street, Buffalo, N. Y. 14206

This bi-annual journal from abroad contains 11 articles besides book-review. While five articles deal with Jainism in America, one from the pen of a Japanese writer gives glimpse of religious life of the Jains settled in Kobe (Japan) as traders in jewellery since 1949. It is heartening to learn that in the community of only 200 Jains at Kobe even the school-going children visit the temple daily before attending their school and a Jain Pathashala is run by a Jain lady on Saturdays to impart religious education to the children.

—रमा कान्त जैन

शासन देवता आणि जिन शासन, ले०—प्रा० डा० उत्तम चन्द जैन ; अनु० (मराठी)-प्रा०-सौ० लीलावती जैन ; प्र०-ब्र० हीरालाल खुशालचन्द दोशी, जैन ग्रन्थमाला प्रकाशन, मु० पो० मांडवे (जि० सोलपुर)-४१३१११; नवम्बर १९९६; पृ० ५०; मूल्य १०/-

सिवनी के प्राचार्य डा० उत्तम चंद जैन ने अप्रैल १९७३ में यह पुस्तिका हिन्दी में प्रकाशित की थी। कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, कार्तिकेय, जिनसेन सूरि, ब्रह्मदेव सूरि, अमृत चन्द्र, टोडर मल, नाथुराम, सदासुख दास, बुधजन, दौलत राम और अमृत लाल चंचल प्रभृति शास्त्र-वेत्ताओं के प्रमाण के आधार पर इसमें पद्मावती, क्षेत्रपाल तथा शासन देवताओं की पूजा को देवमूढ़ता सिद्ध किया गया है क्योंकि जैनधर्म में सरागी देवी-देवताओं की भक्ति उपादेय नहीं है और केवल वीतरागी सर्वज्ञ की उपासना ही सार्थक है। सारांश रूप में, अमृतलाल चंचल का निम्नलिखित पद उद्धृत किया जा सकता है—

क्षेत्रपाल पूजूंगा तो मैं सन्तति पा जाऊंगा।
पद्मावती का ध्यान धरूं, तो स्वर्ग चला जाऊंगा॥
इन मिथ्या देवों का करना, यों सस्पृह आराधन।
देव मूढ़ता कहते इसको, श्री जिनवर सुख साधन॥

इस पुस्तिका का मराठी अनुवाद **धर्म मंगल** की सम्पादिका प्रा० सौ० लीलावती जैन ने प्रस्तुत किया है और प्रकाशक ब्र० हीरालाल खुशालचंद दोशी हैं । ब्र० हीरालाल जी का संक्षिप्त परिचय श्री कुंथुनाथ नेमगोंडा पाटील द्वारा प्रस्तुत किया गया है । ९-११-१९२८ को जन्मे ब्रह्मचारी जी ने अधिकांश मराठी में लिखा है परन्तु हिन्दी में भी लिखा है, और सत्साहित्य के प्रकाशन में आर्थिक सहायता भी प्रदान की है । उनका प्रेरणास्पद संक्षिप्त परिचय यह सूचित करता है कि एक मौन साधक जिन शासन की किस प्रकार सेवा और प्रभावना कर सकता है ।

वर्तमान में अधिकांश साधु-साध्वी समुदायों द्वारा कुदेव-पूजा को जो बढ़ावा दिया जा रहा है, उस सन्दर्भ में यह पुस्तिका जनता में जागृति लाने के लिए प्रासंगिक है ।

कौशाम्बी गढ़, ले० श्री सुबोध कुमार जैन; प्र०-श्री जैन सिद्धान्त भवन, महावीर मार्ग, आरा-८०२३०१; चतुर्थ आवृत्ति १९९७; पृ० ४३ + ६; मूल्य रु० ६/-

इस पुस्तक का सर्वप्रथम प्रकाशन २२-२-१९७८ को हुआ था । लेखक का कौशाम्बी के प्रति विशेष अनुराग इस कारण भी है कि उनके प्रपितामह बा० प्रभुदास ने १८३४ ई० में वहां के प्राचीन जिन-मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था और एक नये जिन-मन्दिर एवं धर्मशाला का निर्माण भी आरम्भ किया था । इस मन्दिर में बिम्ब प्रतिष्ठा १९१८ ई० में लेखक के माता-पिता ने कराई थी । इस तीर्थक्षेत्र से लेखक के परिवार का सम्बन्ध १६३ वर्ष से ५ पीढ़ी से निरन्तर चला आ रहा है और छठी पीढ़ी में अब उनके सुपुत्र अजय कुमार इसके प्रबन्धन में सहभागी हैं ।

ऐतिहासिक काल में कौशाम्बी प्राचीन भारत की एक समृद्ध नगरी थी । भगवान महावीर के जीवन से भी यह जुड़ी है । पौराणिक अनुश्रुति में यह छठे तीर्थंकर पद्मप्रभु के गर्भ और जन्म कल्याणकों की भूमि है । यहां और आस-पास के क्षेत्रों में काफी पुरातात्त्विक सम्पदा मिली है । लेखक ने पौराणिक आख्यानों से कौशाम्बी

सम्बन्धी सन्दर्भों का संक्षिप्त संकलन दिया है। वहाँ से प्राप्त पुरातात्त्विक सामग्री का परिचय भी दिया है। आस-पास के स्थानों का भी परिचय है। कवि वृन्दावन रचित श्री पद्मप्रभु पूजा और कवि मंगल रचित आरती तथा कौशाम्बी में पद्मप्रभु मन्दिर के कुछ चित्र भी हैं।

जैनों की वर्तमान पीढ़ी के लिये भी प्रेरणास्पद सामग्री इसमें है। बा० प्रभुदास के पौत्र और लेखक के पितामह बा० देव कुमार ने १८९८ ई० में 'जैन गजट' (साप्ताहिक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। १९०५ ई० में उन्होंने वाराणसी में स्याद्वाद संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की थी, १९०७ ई० में आरा में जैन सिद्धान्त भवन की स्थापना की और उसी वर्ष श्री जैन कन्या पाठशाला की भी स्थापना की जो आरा जिले की प्रथम कन्या पाठशाला थी और बाद को श्री जैन बाला विश्राम के रूप में विकसित हुई। पुस्तिका सूचना प्रदायी है।

पञ्चाल, खण्ड ९, १९९६, सं०—डा० ए० एल० श्रीवास्तव; प्र०-पञ्चाल शोध संस्थान, ५२/१६ शक्कर पट्टी, कानपुर-२०८००१; पृ० १७८ + ४ मानचित्र + २० चित्र फलक; मूल्य रु० ५०/-

इसके एक भाग में १९ हिन्दी में और ९ अंग्रेजी में शोध निबन्ध हैं जिनमें अधिकांश पञ्चाल क्षेत्र के इतिहास और संस्कृति से सम्बन्धित हैं। भाग दो में पञ्चाल शोध संस्थान विषयक विवरण आदि हैं। समीक्षा के अन्तर्गत विद्वान सम्पादक ने **शोधादर्श**-३० को भी स्थान दिया है और इसकी वस्तुपरक एवं सद्-भावपूर्ण समीक्षा की है जिसके लिये हम उनके आभारी हैं।

प्रो० अजयमित्र शास्त्री का The Saka Era पर शोध निबन्ध इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि शक-विक्रम संवतों पर साहित्यिक सन्दर्भ प्रायः जैन ग्रन्थों पर आधारित हैं, शक संवत को राष्ट्रीय संवत् भी घोषित किया गया है और शक संवत् का विदेशी-मूलक उद्भव होने के बावजूद ज्योतिष-तन्त्र में विशेष प्रचलन रहा है। प्रो० शास्त्री ने जो यह निष्कर्ष दिया है कि इसका प्रवर्तक उज्जैन

का प्रवर्तक शक क्षत्रप चष्टन था, यही निष्कर्ष डा० ज्योति प्रसाद जैन ने अपने शोध प्रबन्ध The Jaina Sources of the History of Ancient India (प्रकाशित १९६४) में दिया है जिसमें उन्होंने जैन साहित्य में सर्वाधिक उल्लेख प्राप्त ५२७ ई० पू० के महावीर निर्वाण संवत् (M. E.), ६६ ई० पू० के पूर्वतर शक संवत् (E.S.E.), ५७ ई० पू० के विक्रम संवत् (V.S.) और ७८ ई० के शक संवत् (S.E.) का विशद विवेचन किया है। यह देखकर विस्मय हुआ कि प्रो० शास्त्री को इस प्रकाशन की कोई जानकारी नहीं है क्योंकि यह कहीं भी उनके द्वारा सन्दर्भित नहीं है जब कि यह कृति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विद्वत् जगत में मान्यता प्राप्त है। यद्यपि प्रो० शास्त्री ने राष्ट्रीय संवत् का उल्लेख किया है, डा० मेघनाद साहा कमेटी की राष्ट्रीय संवत् पर रिपोर्ट को संदर्भित नहीं किया है। अक्टूबर १९५८ में Caravan में प्रकाशित हमारा विस्तृत लेख Our National Calendar भी इस विषय पर दृष्टव्य है।

पत्रिका की सुव्यवस्थित प्रस्तुति के लिए विद्वान सम्पादक साधुवाद के पात्र हैं।

श्रमण, वर्ष ४८, अंक ४-६ (अप्रैल-जून १९९७), प्रधान सम्पादक प्रो० सागरमल जैन; प्र०-पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई. टी. आई. रोड, करौंदी, वाराणसी-२२१००५; पृ० १७२ + ४४; मूल्य रु० १५/-

हिन्दी खण्ड में प्रो० सागरमल जैन के ११ शोध-लेख संग्रहीत हैं और अंग्रेजी खण्ड में १९३० में प्रकाशित Charlotte Krause की The Heritage of Last Arhat और १९५३ में प्रकाशित Amar Chand की Mahavira पुस्तिकाओं का पुनः प्रकाशन है। जैन जगत के कुछ समाचार भी हैं।

डा० सागरमल जैन के सभी लेख गहन शोध से पूरित हैं। जैन सम्प्रदायों में विवाद के मुख्य मुद्दों—अचेलकत्व व सचेलकत्व, स्त्री-मुक्ति, अन्यतैर्थिकभुक्ति एवं सवस्त्र मुक्ति—पर विशद विवेचन द्वारा लेखक ने इन विन्दुओं पर बौद्धिक समाधान का मार्ग प्रशस्त किया है।

तुलसी प्रज्ञा, भाग २२ अंक ४ (जन.-मार्च १९९७) व भाग २३ अंक १ (अप्रैल-जून १९९७), सं०-डा० परमेश्वर सोलंकी; प्र०-जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं-३४१३०६; मूल्य रु० २०/- प्रति

अंक ४ में ३० लेखादि हैं जिनमें ७ अंग्रेजी में हैं और शेष हिन्दी में हैं । डा० मारूति नन्दन प्रसाद तिवारी का लेख Jaina and Brahmanical Art : A Study in Mutuality रोचक है । इस सम्बन्ध में हमारा लेख Some Common Elements in the Jaina and Hindu Pantheons–Yakshas and Yakshinis जो Jaina Antiquary, Vol. XVIII no. 2 (Dec. 1952) और Vol. XIX no 1 (June 1953) में प्रकाशित है, भी दृष्टव्य है ।

अंक १ में २८ लेख हैं जिनमें ६ अंग्रेजी में हैं और शेष हिन्दी में । डा० अमर सिंह का 'जैन परम्परा में स्तूप', डा० परमेश्वर सोलंकी का 'जैन काल गणना और तीर्थंकर-परम्परा', तथा डा० देव सहाय त्रिवेद का 'कल्की व सन्द्रकुपतस्' लेख इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं कि इनमें कुछ नवीन उद्भावनायें प्रस्तुत की गई हैं । अहमदाबाद में २७-२८ अप्रैल, १९९७, को श्वेताम्बर आचार्य-द्वय श्री सूर्योदय सूरीश्वर जी और श्री शील चन्द्र सूरि जी के सान्निध्य में 'जिनागमों की मूल भाषा' पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया था जिसका उद्देश्य कुछ दिगम्बर आचार्यों और विद्वानों के इस मत का प्रतिरोध करना था कि भगवान महावीर और उनके आगमों की भाषा अर्धमागधी प्राकृत नहीं परन्तु शौरसेनी प्राकृत थी । इस संगोष्ठी का विवरण इस अंक में प्रकाशित है । इस प्रकार के विवाद को हवा दिये जाने की ऐसी ही परिणति संभावित थी । इस विषय पर **शोधादर्श**-२६ (जुलाई १९९५) में पृ० १७०-७३ पर हमारा लेख 'भगवान महावीर की प्राकृत' अवलोकनीय है ।

—डा० शशि कान्त

समाचार विमर्श

—श्री अजित प्रसाद जैन

ऊँ ह्रीं ज्ञानमत्यै नमः

नई दिल्ली से हमारे एक सम्माननीय मित्र ने हमारा ध्यान जम्बूद्वीप हस्तिनापुर से प्रकाशित **सम्यग्ज्ञान** (मासिक) के अक्टूबर १९९६ के अंक में प्रकाशित दो रचनाओं —(१) 'श्री ज्ञानमती त्रिषष्ठि पताका' तथा (२) 'त्रिषष्ठि ज्ञान सूत्राणि' की ओर आकर्षित किया है। ये दोनों कृतियां पूज्य गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती जी की प्रशस्ति में उन्हीं की सुशिष्या तथा गृहस्थ पर्याय की छोटी बहन पू० आर्यिका श्री चन्दनामती जी द्वारा उनके ६३वें जन्म दिन के उपलक्ष में (उससे दो मास पूर्व) रची गईं। पहली कृति में पू० ज्ञानमती जी का जीवन वृत्त हिन्दी पद्य में "चालीसा" की तर्ज पर प्रस्तुत किया गया है, तथा दूसरी कृति में उनकी विभिन्न विशेषताओं एवं उपलब्धियों को संस्कृत भाषा में ६३ मन्त्रों में गुम्फित कर प्रस्तुत किया गया है जिनका प्रारम्भ "ऊं ह्रीं ज्ञानमत्यै नमः" मन्त्र से होता है। इन मन्त्रों में आ० ज्ञानमती जी को 'सिद्धान्त चक्रेश्वरी', विघ्न संहारिका' आदि कुछ ऐसी उपाधियों से भी विभूषित कर दिया गया है, जो उनके नाम के साथ पहले जुड़ी नहीं सुनी गईं।

इस युग में जब कि कोई-कोई भ्रष्ट राजनेता भी अपने चालीसा रचवा कर अपने वेतनभोगियों व चाटुकारों से गली-गली गवा कर अपना प्रचार करा रहे हैं, आर्यिका ज्ञानमती जी तो एक विदूषी महाव्रती तपस्विनी हैं, अतः उनकी कीर्ति गाथा पर किसी को भी क्या आपत्ति हो सकती है। उनका जीवन वृत्त तो सदैव प्रेरणास्पद ही रहेगा। किन्तु इस कृति की अन्तिम पंक्तियो के निम्नलिखित अंश ध्यान देने योग्य हैं—

"इस ज्ञानमती त्रयषष्ठि पताका को पढ़ना श्रद्धा रुचि से।
कर्मन की त्रेषठ प्रकृति नाशने की मुक्ति आती इससे॥

× × ×

प्रतिदिन यह पताका पढ़ने से तुम ज्ञान पताका फैलेगी।
विद्यार्थी जीवन में इसका संस्मरण प्रथम श्रेणी देगी ।।"

गनीमत है कि रचयित्री आर्यिका जी ने इस 'ज्ञानमती पताका' को इच्छित फल की प्राप्ति हेतु 'चालीसा' की तर्ज पर प्रतिदिन ६३ बार पाठ करने का उपदेश नहीं दिया।

त्रेसठ कर्मप्रकृतियों के नाश से अर्हन्त पद की प्राप्ति होती है। तीर्थंकरो द्वारा उपदेशित श्रमणाचार का लक्ष्य अर्हन्त पद प्राप्ति ही है। पर वह पथ बड़ा दुर्गम, दुष्कर है। दीर्घकालीन कठोर साधना के उपरान्त भी लक्ष्य प्राप्ति बहुधा कोसों दूर रह जाती रही है। औरों का तो कहना ही क्या, पूर्ण श्रुत के धारक पंच श्रुत केवली भगवन्तों को भी दीर्घ कालीन साधना के बावजूद इस लक्ष्य की प्राप्ति मृग मरीचिका ही बनी रही। इस पंचम काल में तो उस श्रमणाचार के माध्यम से की गई कठोरतम साधना से भी अर्हन्त पद की प्राप्ति सम्भव नहीं—ऐसा स्वयं गणधर देव कह गए हैं। ऐसे में आर्यिका चन्दनमती जी ने 'श्री ज्ञानमती त्रिषष्ठि पताका' रच कर जैन जगत पर महान् उपकार किया है क्योंकि इसके तो केवल श्रद्धा व रुचि से पढ़ने मात्र से त्रेसठ कर्म प्रकृतियों का नाश हो जाएगा—ऐसा उनका वचन है। इस अतीव सरलतम नुसखे का ईजाद करने के लिये आर्यिका चन्दनामती जी का जितना साधुवाद किया जाय, थोड़ा है। इस पंचम काल में अतीत में हुए महान् योगी तपस्वी आचार्यों, मुनिराजों के समय में इस नुसखे के ईजाद न होने से वे तो इसका लाभ उठाने से वंचित रह गये, पर हम आशा करते हैं कि न केवल रचयित्री आर्यिका जी स्वयं वरन् उनकी गुरुणी माता जी सहित संघस्थ सभी साध्वियां, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी इस नुसखे से लाभ उठाकर अपने भवसागर को सरलता पूर्वक पार कर लेंगे तथा वर्तमान के अपने जैसे अन्य आचार्यों, मुनिराजों, आर्यिकाओं, व्रती त्यागियों को भी व्यर्थ में तप-संयम से अपने देव दुर्लभ शरीर को गलाने के बजाय इस नुसखे से सरलता पूर्वक मन वांछित लब्धि प्राप्त करने की प्रेरणा देंगे।

'ॐ ह्री ज्ञानमत्यै नमः' मन्त्र से प्रारम्भ होने वाली 'त्रिषष्ठि ज्ञान सूत्राणि' को प्रारम्भ करने के पूर्व यह उपदेश दिया गया है कि "**अपने ज्ञान की वृद्धि हेतु** निम्न मन्त्रों का प्रतिदिन पाठ करें। विशेष रूप से आश्विन कृष्णा एकम् से आश्विन शुक्ला पूर्णिमा तक (अर्थात् आर्यिका ज्ञानमती जी के जन्म दिन के एक माह पूर्व से उनके जन्म दिन तक) एक माह इन सूत्र पदों का प्रातःकाल पाठ करने से ज्ञान में पूर्ण चन्द्रमा की तरह वृद्धि होगी।" और अधिक उत्तम होता यदि माता जी के गर्भावतरण की तिथि से जन्म की तिथि तक इन सूत्रों के पाठ करने की प्रेरणा दी गई होती।

आर्यिका चन्दनामती जी अपनी गुरुणी (व ज्येष्ठ भगिनी) आर्यिका ज्ञानमती जी के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हैं तथा उनके यश प्रचार में भी चन्दना जी की प्रारम्भ से ही मुख्य भूमिका रही है। अतः इन कृतियों की रचना उनके योग्य ही है। आर्यिका जी सत्य महाव्रत धारिणी हैं, अतः उनके वचनों में संशय की सामान्यतया कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। तथापि हमें लगता है कि जिस प्रकार वर्तमान में कतिपय आचार्यों एवं महामुनियों ने अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य महाव्रतों को अपने आचरण से नई परिभाषायें प्रदान कर दी हैं जिनके चलते अति-परिग्रह संचय एवं दुराचार से भी उनके श्रमणाचार को कोई दोष नहीं लगता, इसी प्रकार कदाचित् सत्य महाव्रत को भी नई परिभाषा प्रदान कर दी गई है। जो भी हो, हमारी अल्प बुद्धि में तो उपरोक्त रचनाओं के सम्बन्ध में रेखांकित शब्दों में की गई घोषणाएं व आश्वासन गुरुडम का, व्यक्ति पूजा का व धर्म मूढ़ता का भौंडा प्रचार है जो अपरिपक्व बुद्धि वाले विद्यार्थियों को तथा भोले श्रावकों-श्राविकाओं को भ्रमित करने वाला है और धर्म के स्वरूप को ही विकृत करने वाला है।

आचार्य सन्मतिसागर प्रकरण—जस का तस

अन्ततः आचार्य श्री सन्मतिसागर (सिंह रथ वाले) पर उन्ही की शिष्या आर्यिका श्री संयमभूषणमती द्वारा दि० २ अप्रैल, १९९५, को मोरेना की जैन समाज के प्रमुखों तथा संयोगवश वहां उपस्थित

महासभा अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी के समक्ष बताये गये दैहिक शोषण-यौनाचार के गम्भीर आरोप पर जांच कमेटी के निष्कर्ष तथा उन पर समाज प्रमुखों के निर्णय प्रकाशित हो कर समाज के सम्मुख आ गए।

दिगम्बर जैन समाज की तीनों अखिल भारतीय संस्थाओं (महासमिति, परिषद तथा महासभा) के अध्यक्षों की सहमति से जस्टिस जे० डी० जैन की अध्यक्षता में गठित पांच सदस्यीय जांच कमेटी ने २८-६-९५ से ८-८-९६ तक १५ बैठकें की, घटना/साक्ष्यों से जुड़े सात स्थानों की यात्रा की तथा दो दर्जन से अधिक व्यक्तियों के साक्ष्य कलमबन्द किए। कमेटी ने अपनी ६३-पृष्ठीय जांच रिपोर्ट चार सदस्यों के हस्ताक्षर सहित दि० ८-८-९६ को तीनों अध्यक्षों को सौंप दी। (पांचवें सदस्य श्री जय कुमार जैन ने कमेटी के निष्कर्ष से सहमत न होने के कारण रिपोर्ट पर हस्ताक्षर नहीं किए।)

जांच कमेटी ने इस प्रकरण में कोई दो टूक निर्णय न लेते हुए अपना यह निष्कर्ष अंकित किया है कि "**सन्देह की सुई संघ के शीर्ष आचार्य सन्मतिसागर के विरुद्ध झुकती प्रतीत होती है।**"

इस अति संवेदनशील विषय पर आम सहमति पर पहुंचने के प्रयास में तीनों अध्यक्षों ने नौ महीने लगा दिये, फिर भी दुर्भाग्यवश आम सहमति नहीं हो सकी। अन्ततः महासमिति तथा परिषद के अध्यक्षों ने जांच कमेटी के निष्कर्ष को स्वीकार करते हुए एक संयुक्त वक्तव्य द्वारा आचार्य सन्मतिसागर जी से अपेक्षा की है कि उन्हें मुनि पद का त्याग कर दिगम्बर जैन आचार्यों के उच्चतम आदर्शों का निर्वहन करना चाहिये तथा वर्तमान के तीन प्रमुख दिगम्बर जैनाचार्यों, श्री विद्यानन्द जी, श्री विद्यासागर जी तथा श्री वर्द्धमान सागर जी में से किसी एक के समक्ष प्रायश्चित ग्रहण करना चाहिये। इन दोनों अध्यक्षों का संयुक्त वक्तव्य जांच रिपोर्ट के सार-संक्षेप सहित **महासमिति पत्रिका, वीर, जैन सन्देश, समन्वय वाणी** आदि कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है।

महासभा अध्यक्ष जी का असहमतिपरक वक्तव्य **जैन गजट** के दि० ३ जुलाई, ९७, के अंक में प्रकाशित किया गया है। उन्होंने जाँच कमेटी के गठन को ही गलत बताते हुए, **बाहर से दबाव आने के कारण उसकी स्वीकृति देने के लिये खेद प्रकट किया है** तथा इस अपराध के लिए आचार्य श्री सन्मतिसागर जी से व समाज से क्षमा याचना की है। उन्होंने, प्रकरण का विस्तृत ब्यौरा देते हुए, कमेटी द्वारा अपनाई गई जांच प्रक्रिया को ही दोषपूर्ण बताया है तथा कहा है कि कमेटी ने **उनके सहित अनेक लोगों का साक्ष्य नहीं लिया** जो लिया जाना चाहिये था, तथा कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में आर्यिका संयमभूषणमती के उस पत्र का भी कोई जिक्र नहीं किया जिसमें उन्होंने आचार्य श्री पर चारित्रिक दोष लगाकर उनका जीवन बर्बाद करने की बात लिखी थी। महासभा अध्यक्ष जी ने आगे लिखा है कि "इसके अलावा बहुत से कारण हैं जिसके कारण **हम लोग जांच कमेटी की तथाकथित रिपोर्ट को अस्वीकार करते हैं**, जांच समिति के निष्कर्ष के रूप में केवल श्री जयकुमार जी जैन, पूर्व विधायक, ने जो निष्कर्ष दिया है केवल उसी से हमारी सहमति है।" [जयकुमार जी का असहमति-नोट कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है।] अन्त में उन्होंने अपना निष्कर्ष निम्न शब्दों में अंकित किया है—

"आचार्य श्री·····ने शुरू से ही एकान्तवादियों के विरुद्ध आगम को सही परिप्रेक्ष्य में रखा है, इसलिए शुरू से ही ये लोग इनके खिलाफ थे और उन्हें किसी भी तरह बदनाम और परेशान करने की चेष्टा करते रहे हैं। आचार्य श्री ने अब यह निर्णय लिया है कि वे विश्वविद्यालय या अन्य किसी कार्य में प्रेरणा व मार्ग दर्शन तो देंगे लेकिन उसमें सक्रिय नहीं रहेंगे। उनके इस निर्णय का हम स्वागत करते हैं और **घोषणा करते हैं कि वे निर्दोष हैं और चरित्र सम्बन्धी जो दोष उनके विरुद्ध लगाया गया है, वह बिल्कुल ही असत्य है।**" महासभा अध्यक्ष जी ने अपनी उपरोक्त घोषणा के समर्थन में यह भी लिखा है कि अपना मन्तव्य पूर्ण रूप से बनाने के पहले उन्होंने अनेक आचार्यों व मुनि संघों से तथा अनेक स्थानों की

समाज से (मोरेना समाज को छोड़कर ?), अनेक विद्वानों से तथा समाज के विशिष्ट लोगों से चर्चा की है ; तथा **आचार्य श्री भरत सागर जी, गणधराचार्य श्री कुन्थु सागर जी व अनेक साधु उनको (आ० सन्मतिसागर को) पहले ही निर्दोष घोषित कर चुके हैं।** उन्होंने इस पर भी दुख प्रकट किया है कि महासमिति व परिषद के अध्यक्षों ने जांच कमेटी के गठन के पहले या उसकी रिपोर्ट आने के बाद कभी भी आचार्य सन्मति सागर जी के पास जाकर इस प्रसंग पर चर्चा नहीं की।

जांच कमेटी के निष्कर्ष से श्री सेठी जी के असहमति व्यक्त करने पर हमें किंचित् भी आश्चर्य नहीं हुआ। ऐसा करना कदाचित् उनकी विवशता भी थी। इसके दो कारण हमारी समझ में आते हैं–

(१) उन्होंने २ अप्रैल, ९५, को इस प्रकरण की जानकारी प्राप्त होते ही इसकी स्वयं जांच करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी तथा दि० १ जून, ९५, के **जैन गजट** में प्रकाशित अपनी जांच रिपोर्ट में आचार्य सन्मति सागर जी पर लगाए गये आरोप को पूर्णतया निराधार तो घोषित किया ही, साथ ही समाज में धार्मिक संस्कार जागृत करने में उनके महत्वपूर्ण योगदान की प्रशंसा भी कर दी तथा मोरेना समाज द्वारा दि० ६ अप्रैल, ९५, की आम सभा में पारित आचार्य श्री के धार्मिक-सामाजिक बहिष्कार के प्रस्ताव की घोर भर्त्सना भी की थी। (यह उल्लेखनीय है कि **जैन गजट** के इसी अंक के सम्पादकीय में श्री सेठी के निकटतम सहयोगी तथा उनके द्वारा की गई तथाकथित जांच से जुड़े प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश ने इसे लीपापोती की संज्ञा दी थी।)

(२) महासभा वस्तुतः दिगम्बर मुनि वेश संरक्षिणी संस्था है जैसा कि स्वयं सेठी जी ने १० अप्रैल, ९५, को कोडरमा में आयोजित चारित्रोन्नयन संगोष्ठी में घोषित किया था कि "महासभा मुनि संस्था में जो विकृतियां आ रही हैं उनसे चिन्तित है लेकिन **हमारे हर दिगम्बर भेषधारी मुनि पूजनीय हैं।**" हमें आचार्य श्री भरत सागर जी द्वारा सन्मति सागर

जी को पहले ही निर्दोष घोषित कर देने पर भी आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि वे प्रारम्भ से ही ऐसी किसी जांच के विरुद्ध रहे हैं। उपरोक्त संगोष्ठी में उन्होंने अपने उद्‌बोधन में कहा था—**"समाज को नंगों की बात नंगों पर छोड़ देनी चाहिए।** .....यदि कोई शिकायत हो, तो श्रावक केवल विनम्रतापूर्वक निवेदन कर सकते हैं।" गणधराचार्य श्री पर भी कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उहोंने तो **लघुविद्यानुवाद** जैसे महान् ग्रन्थ का उद्धार कर सिद्ध कर दिया है कि पुष्पदन्त-भूतबली मुनिराज के साथ विराम को प्राप्त हुई मानी जाती आगमोद्धारक महामुनियों की परम्परा आज भी जीवित है।

हमें तो आश्चर्य तब हुआ था जब यह सूचना मिली थी कि जांच कमेटी का गठन महासमिति व परिषद के अध्यक्षों सहित महासभा अध्यक्ष की सहमति से किया गया है। कदाचित् उनका आकलन रहा होगा कि पांच सदस्यीय कमेटी में महासभा से जुड़े कम से कम दो सदस्यों के रहते कमेटी आचार्य श्री के विरुद्ध किसी निष्कर्ष पर पहुंचने का साहस नहीं जुटा पायेगी।

जांच कमेटी के निष्कर्ष से सहमत होना या न होना तो महासभा-अध्यक्ष जी के निजी अधिकार क्षेत्र की तथा महासभा की नीति की बात है जिस पर हमें कुछ नहीं कहना है। किन्तु उन्होंने जांच कमेटी के निष्कर्ष को अस्वीकार करने के जो कारण दिये हैं तथा कमेटी की ज़ांच प्रक्रिया की जो आलोचना की है, उसे पढ़कर हमें अवश्य दुख हुआ। जांच कमेटी के कम से कम दो सदस्यों—अध्यक्ष जस्टिस जे० डी० जैन तथा वरिष्ठ सदस्य श्री नरेश कुमार सेठी I.A.S. (से० नि०)—को (जिनका जांच में प्रमुख योगदान रहा) सभी प्रकार की न्यायिक एवं प्रशासनिक जांच करने का दीर्घ कालीन उच्चस्तरीय अनुभव है तथा इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती कि उन्होंने जांच प्रक्रिया में कोई त्रुटि की हो। जांच कमेटी की इस प्रकार आलोचना करके महासभा अध्यक्ष जी ने महासभा के लिये संशयात्मक ख्याति ही अर्जित की है।

अस्तु, आचार्य सन्मति सागर जी पर लगे दैहिक शोषण एवं

यौनाचार के घिनौने आरोप के विषय में **स्थिति जस की तस है।** हमें नहीं लगता कि महासभा अध्यक्ष जी तथा कतिपय आचार्यों-मुनियों द्वारा उन्हें निर्दोष घोषित किये जाने के बाद वे दिगम्बर जैन समाज के बहु भाग का प्रतिनिधित्व करने वाली महासमिति व परिषद के *अध्यक्षों के संयुक्त अनुरोध को स्वीकार* कर मुनि धर्म के उच्चतम आदर्शों का निर्वहन करने की शालीनता दिखायेंगे। ऐसी स्थिति में मुनिधर्म एवं समाज की अस्मिता की रक्षा के लिये इन दोनों अध्यक्षों के सामने केवल एक ही विकल्प रह जाता है। वह यह कि, **यदि उनमें साहस हो**, तो मोरेना की समाज द्वारा ६ अप्रैल, १९९५. की आम सभा में पारित किये गये आचार्य सन्मति सागर के धार्मिक-सामाजिक बहिष्कार के प्रस्ताव का अपने प्रभाव क्षेत्र वाली समाजों से अनुमोदन व अनुपालन करायें। यह अत्यन्त कटु औषधि है, पर जब रोग के शमन का और कोई उपाय न रह जाय तो उसका सेवन ही श्रेयस्कर है।

दि० १० जुलाई, ९७, के अंक में **जैन गजट** के सम्पादक जी ने जांच रिपोर्ट अति विलम्ब से प्रस्तुत करने के लिए जांच कमेटी की तथा जांच निष्कर्ष व उस पर अपने संयुक्त वक्तव्य का अनावश्यक सार्वजनिक प्रचार करने के लिये महासमिति व परिषद के अध्यक्षों की तीखी आलोचना करते हुए अपना अभिमत व्यक्त किया है कि "इस प्रकरण का पटाक्षेप होना चाहिए, तुरन्त, अभी, इसी समय।" हम विद्वान सम्पादक जी के अभिमत से पूर्ण रूप से सहमत हैं कि इस प्रकरण का अब तुरन्त पटाक्षेप होना चाहिए किन्तु इसके लिये तो आवश्यक कदम अब सन्मतिसागर जी को ही उठाना है। यदि आचार्य जी (जो शास्त्री परिषद के भी अध्यक्ष हैं) इस प्रकरण की तुरन्त समाप्ति के लिए सचमुच व्यग्र हैं तो उन्हें आचार्य सन्मति सागर जी को मुनि धर्म की उच्चतम मर्यादाओं का पालन करने के लिए दोनों अध्यक्षों के संयुक्त विनम्र निवेदन को अविलम्ब स्वीकार करने के लिये प्रेरित करना चाहिए। **वह विनम्र निवेदन दिगम्बर जैन समाज के बहु भाग की मांग का प्रतिनिधित्व करता है।** इस

प्रकरण का पटाक्षेप तुरन्त तो हो, पर धर्म व समाज की अस्मिता को कौड़ियों के मोल नीलाम करके नहीं।*

भट्टारक जी द्वारा वाहन प्रयोग का त्याग

"**श्रवणबेलगोला**—अहिंसा के जीवन्त-ज्वलन्त प्रतीक भगवान बाहुबली की मनोज्ञ विशाल प्रतिमा के लिए विश्व-विख्यात श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला (हासन-कर्नाटक) के मनीषी भट्टारक स्वामि श्री चारूकीर्ति ने महावीर जयन्ती (२० अप्रैल) को जीवन पर्यन्त किसी भी किस्म के वाहन का उपयोग न करने की घोषणा की है। **अब वे जैन मुनियों की तरह पदयात्रा करेंगे और समाज को २१वीं सदी के लिये जगायेंगे। उनके अभूत पूर्व त्याग ने** जहां एक ओर भट्टारकीय जीवन शैली को एक उदाहरणीय मोड़ प्रदान किया है वहीं दूसरी ओर अन्य भट्टारकों के लिये दुविधा की स्थिति उत्पन्न कर दी है। जैन समाज में सर्वत्र उनके इस संकल्प का हार्दिक स्वागत किया गया।" **—तीर्थंकर, जून १९९७**

---

*[श्री रमा कान्त जैन की निम्नलिखित क्षणिका मार्मिक और प्रासंगिक है—

संयम के साथ सन्मति का मिलाप,
फिल्म चलकर हो गयी फ्लाप।
काफी दिन रहा इसमें सरस संलाप,
अब व्यर्थ है इसके लिये विलाप॥

यह भी उल्लेखनीय है कि कोई अपराधी कभी भी अपना अपराध स्वीकार नहीं करता, और किसी भी देश में रहने वाला उस देश की कानून-व्यवस्था से बाधित होता है। रजनीश को संयुक्त राज्य अमेरिका से वहां के कानून से बचने के लिए भागना पड़ा था। पी० वी० नरसिंहाराव, भू० पू० प्रधानमन्त्री, और लालू प्रसाद यादव जैसे महारथियों को भी अन्ततः देश के कानून को अपने को समर्पित करना पड़ा, तो साधु वेश ही कैसे किसी को स्वेच्छाचारिता का लाईसेन्स दे सकता है? और क्या कोई समाज किसी को देश के कानून की अवहेलना करने के लिए प्रोत्साहन या प्रश्रय दे सकता है? —विचारणीय है। **—डा० शशि कान्त]**

त्याग सदैव अभिनन्दनीय है। किसी भी सुख-सुविधा का, आदत का, परिग्रह का त्याग व्यक्ति के मानसिक-आध्यात्मिक उत्कर्ष में सहायक होता है। मोक्ष मार्ग निवृत्ति का मार्ग है, अतः जैन धर्म में सर्वत्र निवृत्ति की ही महिमा गाई गई है। दिगम्बर जैन गुरुओं (रत्नत्रय धारी आचार्य, उपाध्याय, साधु) की सर्वोपरि प्रतिष्ठा का कारण भी मुख्य रूप से निष्परिग्रही होना है, वर्ना ज्ञान सम्पदा में तो बहुत से गृहस्थ पंडित भी इक्कीस निकल आयेंगे।

पर हमें उपरोक्त समाचार में **दिगम्बर जैन मुनियों की तरह पदयात्रा करने** की बात समझ में नहीं आई। दिगम्बर जैन मुनि तो वर्षा योग के चातुर्मास काल के स्थिरावास को छोड़ कर सामान्यतया सतत पद विहार करते रहते हैं, जबकि भट्टारक स्वामी जी अपने सर्व-सुविधा युक्त मठ में ही प्रायः स्थिरावास करते हैं, केवल जब कभी मन हुआ या भक्तों का विशेष आग्रह हुआ तो कार, वायुयान या रेल से देश-विदेश में गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाते हैं। तो क्या भट्टारक जी अब मठ के स्थिरावास को छोड़ कर दिगम्बर जैन मुनि की तरह परिव्राजक बन सतत पद विहार करेंगे? जैन मुनि तो मार्ग में पत्थर, कंकड़, काटे, गर्मी, सर्दी की वेदना समता पूर्वक सहते हुए नंगे पैर ही विहार करते हैं, तो क्या भट्टारक स्वामी जी भी अब पादुका-विहीन ही ग्राम-ग्राम धर्मोपदेश देते हुए पद यात्रा किया करेंगे?

समाचार में यह भी कहा गया है कि श्रवणबेलगोला मठ के भट्टारक स्वामी जी पद यात्रा के द्वारा "समाज को २१वीं सदी के लिये जगायेंगे।" इसके भी अर्थ हम समझ नहीं पाये। २१वीं सदी में क्या विशेष बातें होने वाली हैं जो आज नहीं हो रही हैं, सिवाय इसके कि जनसंख्या विस्फोट से अन्न-जल की भारी कमी दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक महसूस होगी तथा वैज्ञानिक उसका भी विकल्प ढूंढ़ने को विवश होंगे। वैज्ञानिक नित नये चमत्कारिक आविष्कार प्रस्तुत कर जन जीवन को और अधिक सुविधा-परस्त बनाने में सहायक होंगे। २१वीं सदी की और अन्य विशेषताएं

कदाचित् होंगी, नैतिक मूल्यों का सतत ह्रास तथा अराजकता और भ्रष्टाचार में निरन्तर वृद्धि ।

२१वीं सदी हमारे देश में कोई पहली बार तो आ नहीं रही हैं, इससे पहले भी देश दो बार २१वीं सदी में जा चुका है—एक बार, वीर निर्वाण के २००० वर्ष बाद सन् १५७३ से प्रारम्भ होने वाला शतक जिसमें समाज मुस्लिम आक्रान्ताओं एवम् निरंकुश शासकों द्वारा पद दलित किये जाने पर अपनी अस्मिता भी खोता गया । हां, धर्म के उस आपत् काल में हमारी भट्टारक संस्था ने धर्मायतनों, शास्त्रों एवं धर्म के संरक्षण का महती कार्य किया । दूसरी बार २१वीं शती का दर्शन हमारे देश व समाज को विक्रम संवत के २००० वर्ष पूरे होने के बाद सन् १९४३ से प्रारम्भ होने वाले शतक में हुआ, जिसमें हम अभी भी जी रहे हैं; इस शतक ने देश को विदेशी दासता से तो मुक्त होते अवश्य देखा पर आधी शती बीतते-बीतते राजनीतिज्ञों के भ्रष्टाचार को व कमर-तोड़ महंगाई को आकाश की ऊँचाईयां छूते भी देख लिया, रुपए के क्रय मूल्य को शती पूर्व की तुलना में एक नए पैसे से भी कम होते देख लिया, धर्म को व्यापार में बदलते देख लिया, और मुनिवेशियों में अनाचार पनपते भी देख लिया । अब ईसा की २१वीं शताब्दी में इन सबको और वृहत् आकार ग्रहण करते हुए देखने के लिए और क्या मिलेगा, हम अनुमान नहीं लगा पा रहे हैं । हमारे देश के एक पूर्व प्रधान मन्त्री जी ने भी देश को बड़े जोर-शोर से २१वी सदी में ले जाने की घोषणा की थी, पर वे स्वयं सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर भ्रष्टाचार का एक अनोखा आदर्श प्रस्तुत करके चले गये ।

श्रवणबेलगोला मठ के मनीषी भट्टारक जगद्गुरू, कर्मयोगी स्वस्ति श्री स्वामी जी के इस अभूतपूर्व (?) त्याग से अन्य भट्टारकों में दुविधा की स्थिति उत्पन्न होने की बात भी हमारी समझ में नहीं आई । हमें यह ज्ञात नहीं कि भट्टारक स्वामियों की कोई आचार संहिता भी है जिसका पालन करना उनके लिए अनिवार्य हो । हम तो इतना ही जानते रहे हैं कि मध्य युग में दिगम्बर जैन मुनि के शिथिलाचार की परिणति भट्टारक संस्था के उद्भव के रूप में हुई

तथा उनका आचार घटते-घटते एक स्व-गृह-त्यागी ब्रह्मचारी से अधिक नहीं रह गया। **धर्म मंगल** (मराठी पाक्षिक) पत्रिका के फरवरी १९९७ के 'भट्टारक सम्प्रदाय' विशेषांक तथा दि० १६ मई, १९९७, के अंक में वर्तमान के विभिन्न मठाधीश भट्टारक स्वामियों की चर्या के विषय में रोचक सामग्री प्रकाश में लाई गई है।

एक नई भट्टारक पीठ की स्थापना

जैन गजट (३ जुलाई, १९९७) में प्रकाशित समाचार—"श्रवण-बेलगोला के भट्टारक स्वस्ति श्री चारुकीर्ति जी स्वामी ने दि० १२-६-९७ को पूज्यपाद महामुनि की तपोभूमि कनकगिरि (कर्नाटक प्रदेश के मैसूर जिले में चामराज नगर के समीप मकेपुर ग्राम की पहाड़ी) को एक स्वतन्त्र भट्टारक पीठ घोषित किया तथा **नवदीक्षित आचार्य** भुवनकीर्ति जी को उसका पीठाधीश घोषित किया।"

तत्त्वार्थ सूत्र की सुप्रसिद्ध टीका **सर्वार्थ सिद्धि** तथा **सिद्ध भक्ति स्तोत्र** के कर्ता पूज्यपाद मुनिराज आयुर्वेद के भी रस-सिद्ध आचार्य माने जाते हैं। किंवदंती है कि नागार्जुन ने इस पहाड़ी पर सिद्ध रस प्राप्त किया था तथा उससे पत्थर की शिला को सोने में बदल दिया था जिससे इस पहाड़ी का नाम ही कनकगिरि पड़ गया। कदाचित् यह तीर्थ श्रवणबेलगोला के भट्टारक स्वामी जी की उप-पीठ रहा होगा जिस पर उन्होंने अपने नव दीक्षित शिष्य को प्रतिष्ठित कर अब स्वतन्त्र पीठ घोषित किया है। हम कामना करते हैं कि अभिनव भट्टारक स्वामी जी की छत्रछाया में कनकगिरि क्षेत्र का समुचित विकास होगा।

कनकगिरि क्षेत्र को स्वतन्त्र भट्टारक पीठ घोषित कर के श्रवणबेलगोला के भट्टारक स्वामी जी ने क्षीण होते जा रहे भट्टा-रक वंश में एक की वृद्धि कर दी है। उत्तर भारत में तो सभी भट्टारक पीठें, अप्रासंगिक हो जाने के कारण इस शती के पूर्वार्द्ध में ही समाप्त हो चुकी हैं (यद्यपि गणिनी आर्यिका रत्न श्री ज्ञान-मती जी ने अपने शिष्य क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी को पीठाधीश

घोषित कर रखा है, कदाचित् हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र के 'जम्बूद्वीप' परिसर का, परन्तु अभी उन्हें 'भट्टारक' नाम नहीं दिया है), तथापि दक्षिण भारत में (विशेष कर कर्नाटक व महाराष्ट्र प्रदेशों में) कतिपय दिगम्बर जैन भट्टारक पीठें अभी भी विद्यमान हैं। वहां कदाचित् इन पीठों की आवश्यकता अभी बनी हुई है।

कनकगिरि के अभिनव भट्टारक जी के नाम के साथ "आचार्य" उपाधि लगा होना, दिगम्बर आम्नाय की दृष्टि से, विचित्र लगता है तथा आचार्य पद की अवमानना लगती है। कदाचित् श्रवणबेलगोला के भट्टारक जी ने उन्हें 'आचार्य' पद पर ही सीधे दीक्षित किया है। भट्टारक चारुकीर्ति जी जैन धर्म के ममज्ञ विद्वान हैं तथा दिगम्बर आम्नाय से जुड़े हुए हैं। जैन धर्म में आचार्य को पंचपरमेष्ठी में (अर्हन्त सिद्ध के उपरान्त) तीसरा स्थान प्राप्त है तथा इसके अतिरिक्त 'आचार्य' की अन्य किसी अर्थ में व्याख्या नहीं की गई है। सामान्यतया वरिष्ठ दीक्षा-प्रौढ़ एवं बहुश्रुत मुनिवर ही अपने गुरू आचार्य से उत्तराधिकार के रूप में आचार्य पद श्री संघ की सहमति से प्राप्त करते हैं। जहाँ तक वर्तमान के भट्टारकों के आचार का प्रश्न है, हमारी समझ में तो वह दिगम्बर आम्नाय के एक गृहत्यागी ब्रह्मचारी से अधिक नहीं है। **धर्म मंगल** (पाक्षिक पत्र) के भट्टारक सम्प्रदाय विशेषांक तथा जून (प्रथम पक्ष) १९९७ के अंक से वर्तमान भट्टारकाचार का कुछ दिग्दर्शन होता है।

पावापुरी में प्राचीन चरण बदले गये ?

"**गया, १५ अप्रैल, ९७**—पू० आचार्य श्री भरत सागर म० के सानिध्य में तथा श्री निर्मल कुमार जी सेठी के मार्ग दर्शन में सम्पन्न हुए श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन **(धर्म संरक्षिणी)** महासभा की बिहार शाखा के नैमित्तिक अधिवेशन में पास किये गये एक प्रस्ताव के द्वारा २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की निर्वाण-स्थली पावापुरी, नालन्दा, बिहार, के सुप्रसिद्ध जलमन्दिर में स्थापित भगवान के चरणों को श्वेताम्बर समाज के लोगों के द्वारा बदल

दिये जाने के कृत्य की घोर निन्दा की गई। प्रस्ताव में कहा गया कि समाज के सब लोग इस कृत्य से बहुत दुखी हैं तथा **बिहार सरकार व समस्त दिगम्बर जैन समाज से अनुरोध किया जाता है कि वे इन प्राचीन चरणों को वापस स्थापित करावें और जिन्होंने यह घ्रणित कार्य किया है उन्हें दण्डित किया जावे।**''

–जैन गजट दि० ८ मई, १९९७

''दि० १९ अप्रैल को श्री निर्मल कुमार जी सेठी पटना आए, राजभवन में ठहरे तथा रात्रि में बिहार के गर्वनर साहब से भेंट करके उन्हें पावापुरी में चरणों में किये गये परिवर्तन की बात बताई और कहा कि इससे समस्त दिगम्बर जैन समाज को रोष है।..... २१ अप्रैल को सेठी जी अपने कतिपय सहयोगियों के साथ पावापुरी गए, वहां पर चरणों के दर्शन किए। साफ लगता है कि वे चरण या तो दूसरे बैठा दिये गए हैं या उन पर इतना भारी लेप किया गया है जिससे वे श्वेताम्बर आम्नाय के बना दिये गये हैं। बीच में फूल भी बना दिया गया है। मन्दिर के **पुजारी के अनुसार लेप किया गया है तथा नया फूल दोनों चरणों के बीच बनाया गया है तथा चरणों के नीचे दीवाल पर रंग से चरण फूल बनाए गये** हैं जिससे यह मन्दिर श्वेताम्बरी लगे। यह भी बताया गया कि जो पुराना मन्दिर अब श्वेताम्बर समाज के पास है उसमें भी चरण इसी भांति बदली कर दिए गये हैं।'' **–जैन गजट, दि० १५ मई, ९७**

पावापुरी जल मन्दिर में स्थापित चरणों के मूल स्वरूप में परिवर्तन किये जाने से दिगम्बर जैन श्रद्धालुओं का क्षुब्ध होना स्वाभाविक है, पर बिहार प्रान्तीय महासभा द्वारा पारित किया गया प्रस्ताव तथा उसमें बिहार सरकार व समस्त दिगम्बर जैन समाज से प्राचीन चरणों को वापस स्थापित करवाने का अनुरोध तथा चरणों के बदलीकरण के लिए दोषी श्वेताम्बर समाज के लोगों को दण्डित करने की मांग बड़ी विचित्र लगती है। श्री सेठी जी ने १९ अप्रैल को बिहार के राज्यपाल महोदय से इस कृत्य की शिकायत भी की पर **जैन गजट** दि० १५ मई में प्रकाशित समाचार में यह

जानकारी नहीं दी गई है कि राज्यपाल महोदय की क्या प्रतिक्रिया रही। २१ अप्रैल को पावापुरी जल मन्दिर में चरणों के दर्शन करने पर श्री सेठी यह निश्चय नहीं कर सके कि प्राचीन चरणों को बदल दिया गया है या उन पर ही भारी लेप कर दिया गया है, तथापि मन्दिर के पुजारी का तो यही कहना है कि मूल प्राचीन चरणों पर ही लेप किया गया है तथा फूल बनाए गए हैं। अन्य किसी दिगम्बर या श्वेताम्बर जैन पत्र-पत्रिका में भी प्राचीन चरणों के स्थान पर नए चरण स्थापित किये जाने का कोई समाचार पढ़ने में नहीं आया। इस सबसे पुजारी जी का कथन सच ही लगता है।

भगवान महावीर स्वामी की निर्वाण स्थली के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करने का नालन्दा के समीप स्थित पावापुरी का इतिहास मात्र ८०० वर्ष पुराना है। उसके पूर्व की कुछ शताब्दियों में धर्म द्वेष व अराजकता के भयानक दौर में बिहार प्रदेश में स्थित हमारे प्रायः सभी तीर्थक्षेत्र पूर्ण रूप से नष्ट हो गए थे और जैन धर्मावलम्बियों का व्यापक संहार किया गया था। बचे वे ही रहे जिन्होंने या तो धर्म परिवर्तन कर लिया या जान बचाने के लिए जंगलों में शरण ले ली। (जंगली जीवन बिताने के लिए बाध्य हुए आज के आदिवासी सराक उन्हीं जैन धर्मावलम्बी पूर्वजों की सन्तान कदाचित हैं।) लगभग ८०० वर्ष पूर्व सौराष्ट्र से श्री संघ सहित तीर्थ यात्रा पर निकले एक श्वेताम्बर जैन आचार्य ने अनुमान से भगवान महावीर स्वामी के जन्म, केवलज्ञान एवं निर्वाण स्थलों को चिन्हित करने का प्रयास किया था। उन्होंने नालन्दा के समीप स्थित वर्तमान पावापुरी को भगवान की निर्वाण स्थली घोषित की। कदाचित् ये आचार्य वे श्री अभय देव सूरि ही थे जिनके वि० स० १२६० में प्रतिष्ठित कराए भगवान महावीर स्वामी के चरण जल मन्दिर में स्थापित हैं। जल मन्दिर का भी उसी समय श्वेताम्बर जैन समाज द्वारा निर्माण कराया गया था तथा उस मन्दिर को धीरे-धीरे आज का भव्य रूप प्राप्त हुआ है। जल मन्दिर को भगवान के अन्त्येष्टि स्थल पर निर्मित होने की मान्यता प्राप्त है। जल मन्दिर के अतिरिक्त भगवान के निर्वाण

स्थल के प्रतीक रूप एक अन्य चरण मन्दिर तथा भगवान की अंतिम देशना के प्रतीक रूप एक समवशरण मन्दिर भी श्वेताम्बर समाज द्वारा पावापुरी में निर्मित कराये हुए हैं। कालान्तर में दिगम्बर जैन समाज ने भी पावापुरी को ही भगवान की निर्वाण भूमि स्वीकार कर वहां पर अपना पृथक मन्दिर व एक धर्मशाला का निर्माण करा लिया। तथापि जल मन्दिर को भगवान के अन्त्येष्टि स्थल की मान्यता प्राप्त हो जाने के कारण दिगम्बर जैन तीर्थ यात्री भी उसमें स्थापित चरणों की समान रूप से पूर्ण भक्ति भाव से पूजा-उपासना करते आ रहे हैं। किन्तु अब तो इस पावापुरी पर भगवान महावीर स्वामी की निर्वाण-स्थली होने की मान्यता पर ही प्रश्न चिन्ह लग चुका है।

पिछली शती के उत्तरार्द्ध में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के प्रमुख अधिकारी जनरल एलेक्जेन्डर कनिंघम तथा उनके सहायक ए० पी० कार्लाइल की खोजों (१८७६-७७ ई०) तथा तर्क पूर्ण लेखों ने यह सिद्ध कर दिया कि भगवान महावीर स्वामी की सही निर्वाण-स्थली पावा के अवशेष, कुशीनगर से १६-१७ कि० मी० की दूरी पर स्थित, फाजिल नगर–सठियांव डीह के विस्तृत क्षेत्र में फैले टीलों के नीचे दबे पड़े हैं। वर्तमान प्रायः सभी इतिहास-वेत्ता व पुरा-तत्त्व-विदों के साथ अनेक जैन मनीषियों, (दि०) आचार्य देशभूषण म०, आ० विमल सागर म०, आ० भरत सागर म०, आचार्य विद्या नन्द मुनि, (स्था०) आ० हस्तिमल जी व आचार्य नगराज जी तथा (श्वे०) आ० विजयेन्द्र सूरि जी प्रभृति अनेक आचार्यों ने इस मत को स्वीकार कर लिया है तथा दिगम्बर जैन समाज द्वारा वहां पर एक मन्दिर व कीर्ति-स्तम्भ आदि का निर्माण भी करा दिया गया है और पिछले वर्ष यहां पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन भी किया जा चुका है।

हम यह समझने में असमर्थ हैं कि महासभा के कर्णधारों ने उपरोक्त निन्दा का प्रस्ताव तथा पावापुरी के जल मन्दिर में स्था-पित चरणों के बदलीकरण के दोषी श्वेताम्बर समाज के लोगों को

दण्डित किये जाने की मांग कर किस बुद्धिमानी का परिचय दिया है तथा सौ वर्ष से भी अधिक वय वाली महासभा की गरिमा में किस प्रकार की अभिवृद्धि की है।

महासभा प्रबन्ध कारिणी की बैठक

दि० १५ अप्रैल, ९७, को गया में आचार्य श्री भरतसागर म० के ४९वें जन्म-जयन्ती समारोह के सुअवसर पर तथा आचार्य श्री के सानिध्य में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा की प्रबन्धकारिणी कमेटी की बैठक श्री निर्मल कुमार जी सेठी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। बैठक में एक प्रस्ताव के द्वारा आगामी दो वर्ष "दिगम्बर जैन तीर्थ जीर्णोद्धार/रक्षा वर्ष" के रूप में मनाने का निर्णय किया गया। प्रस्ताव में कहा गया कि हमारे कई प्राचीन मन्दिर/तीर्थ एवं मूर्तियां समय रहते ध्यान न देने के कारण अन्य लोगों के अधिकार में चले गए हैं या विवाद ग्रस्त हो गए हैं। अतः बचे हुए आयतनों की रक्षा एवं जीर्णोद्धार करना हम सबका परम कर्त्तव्य है। ये आयतन हमारी प्राचीन ऐतिहासिक सम्पत्ति की बहु-मूल्य धरोहर हैं।

महासभा द्वारा यह निर्णय अपने अध्यक्ष श्री सेठी जी के द्वारा हाल ही में लिये गए इस संकल्प के परिप्रेक्ष्य में लिया गया है कि वे अगले एक वर्ष अपना पूरा समय अपने को व्यापार कार्य से मुक्त रख कर, ऐसे प्राचीन 'मन्दिर/मूर्तियों के जीर्णोद्धार/सुरक्षा' के कार्यों में लगायेंगे जो अभी तक अनदेखे या उपेक्षित पड़े हुए हैं। पू० आ० श्री भरत सागर म० ने श्री सेठी जी के संकल्प की पूर्ति के लिए अपना मंगल आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा कि वे भी इस संकल्प की पूर्ति में सहायक बनेंगे। महासभा ने समस्त दिगम्बर जैन समाज से भी इस पुनीत कार्य में तन-मन-धन से सहयोग देने की अपील की है। श्री सेठी अपने संकल्पित कार्य की पूर्ति में पूरी लगन के साथ जुट भी गये हैं। हम महासभा के उपर्युल्लिखित निर्णय का हार्दिक स्वागत करते हैं तथा सही दिशा में उठाया गया एक आवश्यक कदम मानते हैं।

महासभा तथा उसके अध्यक्ष जी की इस विषय में अभी तक सोच यह रही है (जैसा हम समझे हैं) कि जो प्राचीन मन्दिर/मूर्ति जीर्ण-शीर्ण अवस्था में जहां पर मिले उसका यथासम्भव उसी स्थान पर जीर्णोद्धार कराकर सामान्य सुरक्षा की व्यवस्था कर दी जाय तथा उस स्थल का एक अतिशय क्षेत्र के रूप में विकास किया जाय। सामान्यतया प्राचीन मन्दिर/मूर्ति ऐसे ही स्थानों में उपेक्षित पड़े मिलते हैं जो पहले कभी समृद्धिशाली बस्तियां थीं पर काल के प्रभाव से अब उजाड़ हो गई हैं और वे स्थल घने जंगलों से आवृत्त हो गये हैं या ऐसी ग्रामीण/कस्बाई बस्तियों में मिलते हैं जहां पहले दिगम्बर जैनों के समृद्ध परिवार अच्छी संख्या में थे तथा उन्होंने या उनके पूर्वजों ने पूजा-उपासना के लिए छोटे-बड़े जैन मन्दिरों का भी निर्माण कराया हुआ था, पर अब प्रायः सभी परिवार निकट-वर्ती या दूर के नगरों में व्यापार/आजीविका हेतु पलायन कर जा चुके हैं, और अब उनकी देख-भाल, सार-संभाल, करने वाला कोई जैन परिवार उस बस्ती में नहीं रह गया। परिणामस्वरूप वे मन्दिर खण्डहरों में बदलते जा रहे हैं या अन्य लोगों ने उन पर अधिकार कर लिया और अपने स्वार्थ साधन हेतु उनका उपयोग कर रहे हैं।

हमें महाराष्ट्र-कर्नाटक प्रदेश आदि की तो कोई जानकारी नही है, पर हमारे उत्तर प्रदेश में ऐसे कई ग्राम व छोटे कस्बे हमारी जानकारी में हैं जहां के प्रायः सभी जैन परिवार जमींदारी उन्मूलन, आज की बदली परिस्थितियों में महाजनी व्यापार के समाप्त प्रायः हो जाने तथा चोरी-डकैती की बढ़ती हुई वारदातों से आतंकित होकर आस-पास के नगरों/महानगरों में जा जा कर बस गये तथा वहां के जैन मन्दिर या तो देख-भाल के अभाव में खण्डहर होते जा रहे हैं या अन्य लोगों ने उन पर अधिकार जमा लिया है। आज दिल्ली महानगर में दिगम्बर जैनों की आबादी का एक बड़ा भाग उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा के ऐसे ही ग्रामीण तथा कस्बाई अंचलों से आकर बसा हुआ है।

हमारी समझ में ऐसी सभी देहाती-कस्बाई बस्तियों में स्थित

जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार करके उन्हें अतिशय क्षेत्रों के रूप में प्रचारित करके विकसित करने की योजना का सफलीभूत होना अत्यन्त संदिग्ध है। हां, यदि हमारे कुछ पूज्य आचार्य, मुनिराज व आर्यिका माताएं जिनका उपयोग अपने कल्पना प्रसूत नए-नए तीर्थों को जन्म देने में ही विशेष रूप से लग रहा है, यदि नए तीर्थों के सृजन का व्यामोह छोड़कर किसी प्राचीन भव्य मन्दिर को अतिशय क्षेत्र के रूप में विकसित करने का संकल्प लेकर जुट जावें या पू० आ० भरत सागर म० (जिन्होंने महासभा अध्यक्ष जी को इस पुनीत काय में अपने सहयोग का आश्वासन भी दिया है) अपने संघस्थ साधु/साध्वियों को ऐसे क्षेत्रों के विकास के कार्य में लगा दें, तो वे अपने तन्त्र-मन्त्र के प्रभाव से या अपनी तपश्चर्या के चमत्कार स्वरूप कृत्रिम/अकृत्रिम अतिशयों का प्रचार कराकर ऐसे अनेक प्राचीन मन्दिरों का उद्धार करा सकते हैं।

हमारी समझ में इसका एक यह सर्वाधिक उपयुक्त एवं व्यवहारिक विकल्प हो सकता है कि ऐसे दिगम्बर जैन विहीन देहाती-कस्बाई क्षेत्रों में स्थित जैन मन्दिरों की प्रतिमाओं को तथा मूल्यवान उपकरणों को किसी निकटवर्ती जैन मन्दिर में पूजा-अर्चना हेतु स्थानान्तरित कर दिया जाय (अभी कुछ वर्ष पहले कुछ ऐसी ही परिस्थितियों में लखनऊ के एक निकटवर्ती कस्बे महोना के जिन मन्दिर की मूर्तियां लाकर वहां से आकर बसे कुछ जैनी भाइयों ने अपने घरों के निकट के जैन मन्दिर में स्थापित कर दी हैं तथा वे उन प्रतिमाओं की पूजा-उपासना उसी भक्ति भाव से करते हैं जैसे वे और उनके पूर्वज महोना में करते थे) तथा मन्दिर के भवन-भूमि आदि को स्थानीय पंचायत/जिला परिषद आदि को सार्वजनिक हित की किसी संस्था (जैसे विद्यालय, चिकित्सालय, पुस्तकालय आदि) को उसमें संचालित करने के लिए निम्नलिखित शर्तों के साथ सौंप दिया जाए—

(१) संस्था के नाम के साथ श्री मन्दिर जी का नाम भी जोड़ दिया जायेगा (जैसे, श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ मन्दिर पंचायती/सार्वजनिक चिकित्सालय/विद्यालय आदि);

(२) हस्तान्तरित किये जा रहे भवन के समुचित रख-रखाव व मरम्मत आदि का पूरा उत्तरदायित्व स्थानीय पंचायत/निकाय···· आदि का होगा;

(३) स्थानीय पंचायत/निकाय इस भवन परिसर में कभी भी किसी को मांसाहार की अनुमति नहीं देगी, ना ही इसमें कोई हिंसा जन्य उद्योग-धन्धे आदि स्थापित करेगी;

(४) स्थानीय पंचायत/निकाय को हस्तान्तरित की जा रही सम्पत्ति को कभी भी बेचने का अधिकार न होगा; और

(५) यदि कभी स्थानीय पंचायत/निकाय को इस हस्तान्तरित की जा रही सम्पत्ति का सार्वजनिक हित की किसी संस्था के संचालन हेतु कोई उपयोग न रह जाए तो उसे इस सम्पत्ति को निकटवर्ती नाम-निर्दिष्ट नगर की दिगम्बर जैन पंचायत को निस्तारण के लिए सौंप देना होगा।

उपरोक्त या इन जैसी शर्तों से ऐसे मन्दिरों के सदुपयोग को तथा मन्दिर की स्मृति तथा जैन समाज के उपकार को दीर्घ काल तक बनाए रखा जा सकेगा।

जहां तक जंगलों से घिरे स्थलों आदि में उपेक्षित पड़ी मूर्तियों व पुरावशेषों की सुरक्षा आदि की समस्या का प्रश्न है, हमने **शोधादर्श**-३१ (मार्च १९९७) के पृष्ठ १२-१५ पर अपने सम्पादकीय लेख में यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि समाज एक राष्ट्रीय जैन संग्रहालय किसी तीर्थ क्षेत्र पर या किसी जैन बहुल केन्द्रीय स्थान पर स्थापित करे जहां ऐसी मूर्तियों एवं पुरावशेषों, विशेषकर जो खण्डित अवस्था में होने के कारण पूजनीय न रह गए हों, को सुरक्षा के लिये स्थानान्तरित किया जा सके। इन्हें निकटवर्ती राजकीय पुरातत्त्व संग्रहालयों को भी हस्तान्तरित किया जा सकता है, पर उनके विषय में एक कटु सत्य यह भी है कि उनमें स्थानाभाव के कारण केवल प्रतिनिधि कृतियां ही प्रदर्शित की जाती हैं तथा शेष जो उनसे कई गुना अधिक हैं बोरों में बन्द बेगौरी पड़ी रहती हैं।

इस प्रकार जो प्राचीन मन्दिर जन विहीन स्थानों में जंगलों से घिरे या पर्वतों आदि की गुफाओं में अब खोज निकाले जाते हैं, यदि उन्हें अतिशय क्षेत्रों के रूप में स्थापित करने में व्यवहारिक कठिनाई नजर आती हो तो उनका जीर्णोद्धार न कर उन्हें पुरातत्त्व विभाग के संज्ञान में लाना चाहिए ताकि पुरातत्त्व विभाग उनकी सुरक्षा व सार-संभाल की सक्रिय जिम्मेदारी संभाल ले। ★

अभिनन्दन

श्री राजीव कान्त जैन, डिवीजनल इन्जीनियर, सिग्नल एण्ड टेलीकाम, वैस्टर्न रेलवे, नेकोटा डिवीजन में DTMF Remote Monitoring System पर मौलिक कार्य किया, जिसका परीक्षण कर इलेक्ट्रानिक्स विषय पर एशिया की सर्वाधिक प्रतिष्ठित पत्रिका Electronics For You ने सराहना की और उनके शोध-पत्र को पत्रिका के जुलाई १९९७ के अंक में प्रकाशित किया।

श्रीमती राजकुमारी कोठारी को उनके शोध प्रबन्ध 'ज्ञाता धर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन' पर राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, द्वारा **पी-एच. डी.** (विद्या वाचस्पति) की उपाधि प्रदान की गई।

६ अप्रैल को नई दिल्ली में विशिष्ट साहित्य सृजन के लिए **डा० राजाराम जैन** (आरा) को **अहिंसा इन्टरनेशनल डिप्टीमल जैन पुरस्कार,** शाकाहार व जीवरक्षा के लिये **श्री धर्मराज रांका** (हैदराबाद) को **अहिंसा इन्टरनेशनल भगवानदास शोभालाल जैन पुरस्कार,** तथा समाजसेवी **श्री हसमुख शान्तिलाल शाह** (अहमदाबाद) को **अहिंसा इन्टरनेशनल रघुबीर सिंह जैन पुरस्कार** प्रदान किये गये।

२२ अप्रैल को नई दिल्ली में **सन्मति सन्देश** (मासिक) के सम्पादक, वयोवृद्ध विद्वान, **पं० प्रकाश चन्द्र जैन 'हितैषी' शास्त्री** को सुदीर्घ सेवाओं के लिए गांधीनाथा रंग जी दिगम्बर जैन जन-मंगल प्रतिष्ठान, सोलापुर द्वारा **आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

प्राकृत भाषा एवं साहित्य के उन्नयन में उत्कृष्ट योगदान के लिए **प्रो० डा० एम० डी०वसन्तराज** (मैसूर) को **आचार्य विद्यानन्द पुरस्कार** तथा **प्राकृत-मनीषी** की उपाधि से सम्मानित किया गया।

२३ अप्रैल को श्री महावीर जी में **डा० सूरजमुखी जैन** को उनकी कृति **अपभ्रंश का जैन रहस्यवादी काव्य और कबीर** पर अपभ्रंश साहित्य अकादमी द्वारा **स्वयम्भू पुरस्कार** तथा **डा० नीलम**

जैन को उनकी कृति **सराक क्षेत्र** पर जैन विद्या संस्थान द्वारा **महावीर पुरस्कार** प्रदान किया गया।

९ मई को नई दिल्ली में ९८ वर्षीय सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्री पद्मभूषण **पं० बलदेव उपाध्याय** (वाराणसी) को कुन्दकुन्द भारती ट्रस्ट द्वारा प्रवर्तित **आचार्य उमास्वामी पुरस्कार** लोकसभाध्यक्ष श्री पी० ए० संगमा द्वारा प्रदान किया गया और उन्हें **साहित्य सम्राट** की मानद उपाधि से अलंकृत किया गया।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, द्वारा २८ जून को **डा० उदयचन्द्र जैन** (उदयपुर) को उनकी कृति **जैन धर्म स्वरूप विश्लेषण एवं पर्यावरण संरक्षण** तथा **आचार्य गोपीलाल अमर** (नई दिल्ली) को उनकी कृति Jaina Solution to the Pollution of Environment पर संयुक्त रूप से **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार** और **आचार्य राजकुमार जैन** (नई दिल्ली) **डा० अजित कुमार जैन** (विदिशा) तथा **प्रो० ए० सुन्दर** (बीजापुर) को वर्ष १९९५ के और **डा० अनिल कुमार जैन** (अहमदाबाद), **डा० नन्द लाल जैन** (रीवा) एवं **डा० महावीर राज गेलरा** (लाडनूं) को वर्ष १९९६ के **अर्हत् वचन पुरस्कार** प्रदान किये गये।

२८ जून को इन्दौर में ही महिलाओं के उत्थान में विशिष्ट योगदान के लिये **श्रीमती आशा जैन विनायका** को साहू जैन ट्रस्ट द्वारा प्रवर्तित एवं दिगम्बर जैन महासमिति द्वारा संयोजित **श्रीमती रमा जैन महिला प्रतिभा पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। श्रीमती विनायका ने पुरस्कार राशि ५१०००/- में अपने परिवार की ओर से २१,०००/- रु० मिलाकर कुल राशि जबलपुर के **भूकम्प पीड़ितों के सहायतार्थ** प्रदान कर दी।

वैज्ञानिक इतिहास में जैनों के योगदान के महत्व को देखते हुए **भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, दिल्ली** ने **डा० नन्द लाल जैन** (रीवा) द्वारा प्रस्तुत **जैन आगमों के वैज्ञानिक विवरणों के विषयवार वर्गीकरण और अंग्रेजी अनुवाद की परियोजना** को अनुमोदित कर दिया है।

जैन धर्म, संस्कृति, शिक्षा व पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए **श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन** (फिरोजाबाद) को ऋषभांचल ध्यान योग केन्द्र, गाजियाबाद, में **ऋषभदेव पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

श्री रतनलाल सी० बाफना (जलगांव) को अहिंसा, सत्य तथा शाकाहार के प्रचार-प्रसार हेतु किये गये उत्कृष्ट कार्यों के लिये भगवान महावीर फाउण्डेशन, चेन्नई, द्वारा **महावीर पुरस्कार** प्रदान किया गया।

खण्डेला में खण्डेला नगर प्रतिष्ठा महोत्सव समिति राजस्थान, द्वारा **श्री सुरेश चन्द जैन सरल** (जबलपुर) को पुरस्कृत, और उनकी कृति **विद्याधर से विद्यासागर** (भाग १ व २) का लोकार्पण, किया गया।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद ने **डा० रमेश चन्द्र जैन** (बिजनौर) की **बौद्धदर्शन की शास्त्रीय समीक्षा** को **गणेश वर्णी पुरस्कार** के लिए चयनित किया।

पं० विश्वनाथ पाठक कृत संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित महाकवि हाल की प्राकृत **गाथासप्तशती** को उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा पुरस्कृत किया गया।

युवा समाजसेवी **श्री अशोक जैन**, सीताराम बाजार, दिल्ली, से दिल्ली महानगर परिषद के पार्षद निर्वाचित हुए।

कु० अर्चना जैन को 'सामिष और निरामिष आहार का बच्चों के (वय ४ से ६ वर्ष) संवेगात्मक विकास पर प्रभाव' विषय पर सागर विश्वविद्यालय ने पी-एच. डी. की उपाधि प्रदान की।

उपरोक्त सभी महानुभावों का **शोधादर्श** परिवार उनकी उपलब्धि पर अभिनन्दन करता है और हार्दिक शुभकामनायें प्रेषित करता है।

—

समाचार विविधा

लखनऊ में महावीर जयन्ती

शनिवार १९ अप्रैल को महावीर जयन्ती की पूर्व संध्या पर युवा जैन मिलन द्वारा अमीनाबाद में प्रदेश के लोक निर्माण मन्त्री श्री कलराज मिश्र की अध्यक्षता में पुष्पांजलि सभा आयोजित की गई।

श्री जैन प्रवर्द्धनी सभा द्वारा २० अप्रैल को चारबाग मन्दिर से शोभा यात्रा निकाली गई जो नगर के विभिन्न भागों में घूमती हुई कैसरबाग में अमीरुद्दौला लायब्रेरी पार्क में पहुंच कर सार्वजनिक सभा में परिवर्तित हुई। सभा के मुख्य अतिथि प्रदेश के राज्यपाल श्री रोमेश भण्डारी तथा अध्यक्ष लखनऊ के महापौर डा० सतीश चन्द्र राय थे। राज्यपाल ने भगवान महावीर को अपनी विनयाञ्जलि अर्पित करते हुए उन्हें त्याग और अहिंसा का रास्ता दिखाने वाला बताया। सभा में वक्ताओं ने भगवान महावीर की शिक्षाओं और उनके आदर्शों की चर्चा की। महापौर ने इस अवसर पर नगर के किसी एक उद्यान का नाम महावीर के नाम पर रखे जाने का आश्वासन दिया। सभा स्थल पर शाकाहार एवं जीवदया प्रदर्शनी भी आयोजित की गई।

उसी दिन श्री महावीर जैन साधना केन्द्र, पटेल नगर, में महावीर जयन्ती 'अहिंसा दिवस' के रूप में मनाई गई जिसकी अध्यक्षता संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान के निदेशक डा० महेन्द्र भण्डारी ने की।

२१ अप्रैल को इन्दिरानगर जैन मंदिर में वीर प्रभु का पालना तथा नृत्य, संगीत व भजन का कार्यक्रम हुआ। सआदतगंज जैन मन्दिर में भी विशेष कार्यक्रम हुआ।

२४ अप्रैल को रोटरी क्लब में भगवान महावीर के सम्बन्ध में डा० शशि कान्त की वार्ता हुई, श्री रमा कान्त जैन ने अपनी काव्य विनयांजलि प्रस्तुत की, और प्रबुद्ध श्रोताओं ने भगवान महावीर के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में चर्चा की।

२५ व २६ अप्रैल को राय उमानाथ बली प्रेक्षागृह में कर्मभूमि आर्ट्स ग्रुप द्वारा भगवान महावीर के जीवन की घटनाओं पर आधारित करुणावतार नाटक का मंचन किया गया। इसकी लेखिका श्रीमती सुधा जिन्दल थीं और आर्थिक सहयोग उत्तर प्रदेश शासन के संस्कृति विभाग द्वारा किया गया था।

२७ अप्रैल को गांधी भवन में गांधी स्मारक निधि और जैन मिलन के संयुक्त तत्त्वावधान में सभा आयोजित की गई जिसमें मुख्य वक्ता श्री त्रिभुवन प्रसाद तिवारी, भूतपूर्व उप-राज्यपाल, थे।

दिल्ली में 'उपनिषद साहित्य में जैन तत्त्व' संगोष्ठी

२७ अप्रैल को ऋषभदेव प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, द्वारा राष्ट्रीय संग्रहालय में 'उपनिषद साहित्य में जैन तत्त्व' और 'सराक एवं अन्य जनजातियों में जैन धर्म' विषयों पर दो-दिवसीय संगोष्ठी हुई जिसमें छः सत्रों में चौदह विद्वानों ने अपने शोध पत्र पढ़े।

वाराणसी में श्री जिनेन्द्र वर्णी पर द्वि-दिवसीय संगोष्ठी

२४–२५ मई को श्री दिगम्बर जैन मन्दिर भेलूपुर में श्री दिगम्बर जैन समाज काशी तथा अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद के संयुक्त तत्त्वावधान में **जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश** तथा **समणसुत्तं** के रचनाकार स्व० श्री जिनेन्द्र वर्णी के हीरक जयन्ती वर्ष के उपलक्ष में दो-दिवसीय संगोष्ठी आयोजित की गई। उद्घाटन सत्र के अध्यक्ष प्रो० मण्डन मिश्र, कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, ने वर्णी जी को 'काशी के गौरव' के रूप में प्रतिष्ठित किया। अन्य चार सत्रों में २२ विद्वानों ने अपने निबन्धों का वाचन किया। सत्रों की अध्यक्षता क्रमशः प्रो० एस० रिनपोछे (निदेशक, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ), डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल (जयपुर), पं० प्रकाश हितैषी शास्त्री (दिल्ली), तथा पं० अमृत लाल जैन शास्त्री (वाराणसी) ने की। इस संगोष्ठी में वर्णी जी को 'सिद्ध सारस्वत', 'शताब्दी पुरुष', 'युग पुरुष', 'विराट पुरुष' और 'वैदुष्य का महासमुद्र' बताते हुए उनके साहित्य के अध्ययन और उसका अंग्रेजी अनुवाद आदि करने पर बल दिया गया।

श्रुत पंचमी

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, के शोध पुस्तकालय में, पुस्तकालय के २२वें स्थापना दिवस पर १० जून को **श्रुत पंचमी** के उपलक्ष में शास्त्रों की आरती की गई और धार्मिक गोष्ठी हुई जिसमें श्री अजित प्रसाद जैन, डा० पूर्ण चन्द्र जैन, डा० शशि कान्त और श्री रमा कान्त जैन ने श्रुत पंचमी के इतिहास और उसके महत्त्व पर प्रकाश डाला। जिनवाणी के स्तवन के साथ गोष्ठी का समापन हुआ।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अलकबीर बूचड़खाने की क्षमता ५० प्रतिशत करने का आदेश

हैदराबाद के डा० ए० किशनराव, श्रीमती जी० सत्यवाणी, श्री तुक्कोजी एवं अखिल भारतीय गो सेवा संघ की याचिकाओं पर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री बी० पी० जीवन रेड्डी एवं न्यायाधीश श्री सुहास चन्द्र सेन की खण्डपीठ ने अपने निर्णय में अलकबीर बूचड़खाने को १ अप्रैल, १९९७, से अपनी क्षमता आधी करने का आदेश दिया है और इस आदेश के कठोरता से अनुपालन का दायित्व केन्द्र सरकार, आन्ध्र प्रदेश सरकार तथा आन्ध्र प्रदेश प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड पर डाला है।

शोक संवेदन

१३ मार्च को भारतीय विद्या पर प्रामाणिक साहित्य प्रकाशन के लिए विख्यात 'मोतीलाल बनारसीदास' फर्म के अधिष्ठाता पद्मश्री श्री शान्ति लाल जैन का निधन हो गया।

१४ अप्रैल को शाजापुर में ९५ वर्षीया श्रमणसंघीय साध्वी श्री पानकुंवर जी म० सा० का संथारापूर्वक देहावसान हो गया।

२१ अप्रैल को जयपुर में समर्पित समाजसेवी, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासमिति से जुड़े, श्री कपूर चन्द पाटनी का निधन हो गया।

मई में विद्वान प्रतिष्ठाचार्य ब्र० बाबा सूरजमल जी का शान्तिवीरनगर, श्री महावीर जी, में देहावसान हो गया ।

१९ मई को जोधपुर में **ललकार** पत्र के सम्पादक श्री गोविन्द सिंह लोढ़ा का निधन हो गया ।

३१ मई को हस्तिनापुर में ९६ वर्षीय आदि सागर जी महाराज का स्वर्गवास हो गया ।

२ जून को दक्षिण भारत जैन सभा के अध्यक्ष ६५ वर्षीय श्री रतनकांत फडे का निधन हो गया ।

११ जून को सोलापुर में जीवराज जैन ग्रन्थमाला के सम्पादक व संचालक, कारंजा निवासी, ९० वर्षीय, पं० नरेन्द्र कुमार भीसीकर शास्त्री का सल्लेखनापूर्वक स्वर्गवास हो गया । शास्त्री जी ने **धवला** और **षट्खण्डागम** नामक मूल आगम ग्रन्थों के संशोधन, सम्पादन और प्रकाशन का महत्वपूर्ण कार्य किया था ।

१५ जून को कलकत्ता में स्वतन्त्रता-सेनानी व राजनेता श्री विजय सिंह नाहर का स्वर्गवास हो गया ।

२३ जून को गंगाशहर (बीकानेर) में अणुव्रत आन्दोलन के प्रेरक व प्रवर्तक, तेरापन्थ के गणाधिपति, ८३ वर्षीय, आचार्य श्री तुलसी नहीं रहे ।

१२ जुलाई को उज्जैन में ८३ वर्षीय समाजसेवी, चिन्तक विद्वान, वाणी भूषण श्री सत्यन्धर कुमार सेठी का स्वर्गवास हो गया ।

नई दिल्ली में ८६ वर्षीय पं० हीरा लाल जैन 'कौशल', सम्पादक, 'पूजन पाठ प्रदीप', का भी उसी माह निधन हो गया ।

उपरोक्त दिवंगत के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है और उनकी आत्मा की चिरशान्ति एवं सद्गति की प्रार्थना करता है, तथा शोक संतप्त परिजनों के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है ।

छपते-छपते

बड़े दुख: की बात है कि हमारी संस्था **तीर्थंकर महाबीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र. के अध्यक्ष श्री सुमेर चन्द जैन पाटनी का** हृदयगति रुक जाने से शनिवार, दिनांक १६ अगस्त, १९९७, को लखनऊ में **निधन** हो गया। उनका जन्म २५ दिसम्बर, १९२०, को हुआ था। वह लखनऊ के एक प्रतिष्ठित व्यवसायी थे और 'तेजपाल लाधूलाल जैन' प्रतिष्ठान के अधिष्ठाता थे तथा सुश्रावक थे। वह प्रारम्भ से ही सामाजिक कार्यों में विशेष अभिरुचि रखते थे और उनकी प्रतिष्ठा जैन समाज के बाहर लखनऊ के समग्र जनजीवन में भी थी जिसके परिणामस्वरूप अपने वार्ड से लखनऊ नगर महापालिका के सभासद भारी बहुमत से निर्वाचित हुए थे।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के संस्थापक सदस्यों में वह थे और प्रारम्भ से ही उसके अध्यक्ष भी रहे। उनका उन्मुक्त सहयोग और मार्गदर्शन समिति को निरन्तर प्राप्त होता रहा। समिति की प्राय: सभी बैठकों में उपस्थित रहना वह अपना दायित्व समझते थे। विगत लगभग डेढ़ वर्ष से वह अस्वस्थ चल रहे थे तो भी समिति के कार्यकलापों में पर्याप्त अभिरुचि ले रहे थे।

लखनऊ की जैन समाज की प्राय: सभी संस्थाओं से वह जुड़े हुए थे, यथा—श्री जैन धर्म प्रवर्द्धिनी सभा, जैन शिक्षा संस्थान, जैन मिलन, डालीगंज जैन बाग, आदि। जैनेतर संस्थाओं में रोटरी क्लब, अवध जिमखाना क्लब और अग्रवाल शिक्षा संस्था, आदि से भी वह सक्रिय रूप से जुड़े रहे थे।

अखिल भारतीय संस्थाओं में भारतीय जैन मिलन के वे कई वर्षों तक अध्यक्ष रहे और श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म

संरक्षिणी) महासभा के कोषाध्यक्ष पद पर अपने अन्त समय तक थे। उत्तर प्रदेश दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा अयोध्या तीर्थक्षेत्र कमेटी से भी वह सक्रिय रूप से सम्बद्ध थे।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, अपने अध्यक्ष श्री सुमेर चन्द जैन पाटनी के निधन पर गहरा शोक प्रकट करती है तथा दिवंगत आत्मा की सद्गति एवं शान्ति के लिए प्रार्थना करती है, और उनके शोक संतप्त परिवार के साथ हार्दिक संवेदना व्यक्त करते हुए श्री जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना करती है कि उन्हें इस महान दुःख को समतापूर्वक सहन करने की शक्ति प्राप्त हो।

आभार

इन्दौर से प्रकाशित हिन्दी विचार-मासिक **तीर्थंकर** के जुलाई १९९७ के अंक में पृष्ठ २३-२५ पर **शोधादर्श**-३१ (मार्च १९९७) से श्री अजित प्रसाद जैन के सम्पादकीय 'मन्दिरों से चोरियाँ' को साभार प्रकाशित कर **शोधादर्श** की जो गरिमा बढ़ाई है, उसके लिये डा० नेमीचन्द जैन के प्रति **शोधादर्श** सम्पादक मण्डल आभारी है।

डा० ओम प्रकाश अग्रवाल जैन, अलीगंज, लखनऊ, ने अपनी माताजी श्रीमती वीना देवी की ओर से **शोधादर्श** को सहयोग स्वरूप ५०१ रुपये भेंट किये।

डा० शशि कान्त व श्री रमा कान्त जैन, लखनऊ, ने अपने पिताजी इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि स्व० डा० ज्योति प्रसाद जैन की नवम पुण्य तिथि पर उनकी स्मृति में **शोधादर्श** को ५० रुपये भेंट किये।

श्री तारा चन्द जैन अग्रवाल, पचेवर, ने स्व० श्री पांचूलाल जी जैन अग्रवाल की तेरहवीं पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को ११ रुपये भेंट किये।

श्री जमना लाल जैन, सारनाथ, ने अपने मामाजी सारनाथ निवासी श्री विनोद कुमार जैन की ओर से नयी दुकान के शुभ मुहुर्त के प्रसंग से **शोधादर्श** को १० रुपये भेंट किये।

शुद्धि-परिशोधन

शोधादर्श-३१ के पृ० २३ पर पंक्ति १३-१४ पर निम्नवत पढ़ा जाय—

उक्त तीर्थंकर चक्रवर्तियों के अलावा ६ चक्रवर्तियों में से ५ मुक्ति लाभ करते हैं, २ स्वर्ग प्रयाण करते हैं और २ नरकगामी हैं।

१२ चक्रवर्तियों के नाम हैं—भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, सुभौम, पद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त । उपरोक्त में से हरिषेण और जयसेन स्वर्ग गये, तथा सुभौम और ब्रह्मदत्त नरक गये । अन्य सभी मोक्ष गये ।

—डा० शशि कान्त

पाठकों की दृष्टि में

शोधादर्श मूलतः जैन धर्म, दर्शन, साहित्य, संस्कृति और जैन समाज के विविध-पक्षीय सर्वाङ्गीण स्वरूप को प्रस्तुत करने वाली एक पठनीय पत्रिका है । इस से जैन जगत के सामयिक समाचारों, जैन विद्या के शोधकार्यों, प्रकाशनों, सम्मानों तथा जिज्ञासाओं के समाधान भी सहज सुलभ हो जाते हैं । जैन समाज में पाई जाने वाली कतिपय भ्रान्तियों, अंधविश्वासों अथवा कुरीतियों के प्रति सावधान करने वाली ओजस्वी वाणी भी इस पत्रिका से निकलती है । इन रचनाओं का केन्द्र बिन्दु जैन समाज भले ही हो, इनका सरोकार सम्पूर्ण भारतीय समाज से रहता है । इतना ही नहीं, जैनेतर विद्या पर भी प्रकाश डालने में **शोधादर्श** पीछे नही है । विवेच्य अंक ३० उपरोक्त तथ्य की पुष्टि करता हैं जिसमें 'भारतीय दर्शन में सृष्टि वर्णन', 'पर्यावरण और जीवदया' तथा 'गंगा' जैसे आलेख हैं।

—डा० ए० एल० श्रीवास्तव, लखनऊ

अंक ३० में 'भारतीय दर्शन में सृष्टि वर्णन' अच्छा शोधपूर्ण लेख है । गंगा पर विभिन्न दृष्टि से जो जानकारी दी गई है रोचक होकर ज्ञानवर्द्धक है । जीवन दर्शन के अन्तर्गत—मैं, बहो·····बहते

चलो—छोटी कवितायें मनुष्य की भटकन को दूर करने तथा जीवन के ठहराव को गतिशीलता देने में प्रेरक हैं। बहुत कुछ सोचने-समझने को बाध्य करती हैं। जिज्ञासायें एवं समाधान—विषयों पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। साथ ही पुस्तकों की समीक्षायें भी उनसे कुछ प्राप्त करने की ललक जगाती हैं।

अंक ३१ में 'जैन दर्शन, अध्यात्मवादी काव्य और कबीर' चिन्तन के लिए मार्ग खोलता है। 'चिन्तन कण' ज्ञानवर्द्धक हैं। 'साहित्य सत्कार' के अन्तर्गत कुछ नवीन पुस्तकों की विवेचना संक्षिप्त होते हुए भी सारगर्भित है। अन्य सामग्री भी ध्यान आकृष्ट करती है।

—श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर

शोधादर्श-३० (नवम्बर, ९६) के पृष्ठ ३१२ पर यह टिप्पणी दी है कि आपकी जानकारी के अनुसार मोहनजोदड़ो के उत्खनन में प्राप्त मुद्राओं पर अंकित अक्षरों को अभी तक कोई नहीं पढ़ सका है, तथा उसकी लिपि एवं ब्राह्मी लिपि में कोई समानता नही है। आपने सिन्धु सभ्यता की भाषा प्राकृत होने पर भी अपनी आशंका व्यक्त की है।

उक्त संदर्भ में मैं आपसे कतिपय तथ्यपरक निवेदन करना चाहता हूं। आशा है, आप जैसे मनीषी विचार कर अपना अभिप्राय अवश्य लिखेंगे :—

१. प्रसिद्ध विद्वान पी० आर० देशमुख ने अपनी शोध-कृति **इण्डस सिविलाईजेशन, ऋग्वेद एण्ड सिन्धु कल्चर** के पृष्ठ ३६१ पर सिन्धु सभ्यता की भाषा को स्पष्ट रूप से प्राकृत माना है। तथा बिहार के आई० ए० एस० अधिकारी श्री निर्मल चन्द वर्मा ने १२ वर्ष के गहन शोध के बाद यह सिद्ध किया है कि सिन्धु सभ्यता की भाषा प्राकृत थी। यह तथ्य हम **प्राकृत विद्या** में सप्रमाण पहले प्रकाशित कर चुके हैं।

२. श्री राजेन्द्र कुमार जैन, मेरठ, द्वारा संकलित **जैन इतिहास पर लोकमत** नामक पुस्तक के पृष्ठ ४९ पर सिन्धु सभ्यता

की सीलों में प्राप्त लिपि एवं ब्राह्मी लिपि के वर्णों का तुलनात्मक अध्ययन दिया हुआ है, जिसके अनुसार ब्राह्मी लिपि के १२ वर्ण सिन्धु सभ्यता में प्राप्त लिपि से घनिष्ठ साम्य रखते हैं।

—**डा० सुदीप जैन**, सम्पादक, **प्राकृत विद्या**, नई दिल्ली

[प्रथमतः यह उल्लेखनीय है कि जब तक लिपि पढ़ी न जाए, भाषा के सम्बन्ध में कोई भी मत नहीं दिया जा सकता। अतः आज भी सिन्धु सभ्यता से प्राप्त मुद्राओं पर अंकित लेख किस भाषा में हैं, यह मात्र अनुमान पर आधारित है। कुछ चिन्हों की आकृति का ब्राह्मी के वर्णों की आकृति से साम्य होने से भी कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। जब तक कोई सार्थक वाचन नहीं होता, यह नहीं कहा जा सकता कि उन चिन्हों के वर्ण-मूल्य में ध्वन्यात्मक एवं वर्णपरक समानता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी वर्ण माला में २६ और रूसी वर्ण माला में ३२ वर्ण हैं। इनमें से १२ वर्णों की आकृति समान है परन्तु उनमें से ६ में ध्वन्यात्मक समानता नहीं है और शेष ६ में वर्णपरक समानता भी नहीं है; तथा दोनों ही वर्णमालाओं के स्रोत भी भिन्न हैं।

हमारे लेख **शोधादर्श**-१ (फरवरी १९८६) में पृ० २०-२३ पर 'भारत में लिपि की प्राचीनता' और **शोधादर्श**-२६ (जुलाई १९९५) के पृ० १७०-७३ पर 'भगवान महावीर की प्राकृत', तथा Swasti Sri (Dr. B. Ch. Chhabra Felicitation Volume, 1984) के पृ० ९३-९८ पर The Prakrit, भी अवलोकनीय हैं।

—**डा० शशि कान्त**]

शोधादर्श का ३१वां अङ्क मिला। इसके शोधपरक आलेखों को ध्यान से पढ़कर हर्ष हुआ। कहीं (पृ० ५९) बाहुबलि जी की मूर्ति के विषय में नये विवाद के वृत्त को पढ़कर भारी खेद और आश्चय का अनुभव हुआ और कहीं (पृ० ७५) मुस्लिम बालिका के आष्टान्हिक अनशन तप—बारह वर्ष की आयु में लगातार आठ उपवास के समाचार पढ़कर अत्यधिक विस्मय का अनुभव हुआ। **शोधादर्श** गति से प्रगति की ओर बढ़े, यह मनः कामना है।

—**पं० अमृत लाल जैन शास्त्री**, वाराणसी

पूर्व अंकों की भांति इस अंक में भी शोधपरक प्रामाणिक सामग्री है। शोधकर्ताओं, गम्भीर अध्येताओं के लिये यह पत्रिका विशेष महत्त्व रखती है। पर्यावरण और जीवदया इस समय ज्वलन्त समस्यायें हैं। जैन धर्म और संस्कृति का व्यवहार में पालन करके इन समस्याओं का समाधान प्राप्त हो सकता है।

—डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, आगरा

शोधादर्श-३१ के सम्पादकीय में 'राष्ट्रीय जैन संग्रहालय' स्थापित करने का विचार बहुत ही उत्तम है। कृपया इस कार्य हेतु आवश्यक रूपरेखा तैयार कर समुचित प्रयास भी करें। 'पर्यावरण और जीवदया' पर श्री कैलाश भूषण जिन्दल जी का लेख विचारोत्तेजक है तथा हमारी संवैधानिक धाराओं की समीक्षा चाहता है।

—श्री आदित्य जैन, लखनऊ

अपनी पठनीय एवं उपादेय ज्ञानवर्धक सामग्री के कारण **शोधादर्श** पत्रिका का नाम सार्थक है। डा० विश्व नाथ मिश्र तथा आपका लेख—'चक्रवर्ती भरत का ऐतिह्य' विशेष उल्लेखनीय हैं। पत्रिका के विविध स्तम्भों से अनेकानेक नवीन ज्ञातव्यों की जानकारी सहज ही हो जाती है। निःसंदेह आपका सारस्वत प्रयास सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

—श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर

बहुत ही सुन्दर प्रकाशन, शिक्षाप्रद। लेख बहुत ही चिन्तनशील एवं सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

—श्री नरेन्द्र कुमार जैन, देहरादून

सारगर्भित लेखों का संकलन देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई।

—आचार्य शिवचन्द्र शर्मा, सहारनपुर

शोधादर्श क्रान्तिकारी विचारधारा वाला पत्र है जो निर्भीकता पूर्वक समाज में वर्तमान में आई विरूपता और विसंगतियों पर अपनी पैनी दृष्टि से समीक्षण पूर्वक अपना बेवाक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

—आचार्य राजकुमार जैन, दिल्ली

आपकी लेखनी स्पष्ट रही है, समाज को बहुत दिया है पर यह समाज में कमी है—पारखी अल्प हैं, भेड़ चाल अधिक हैं। पंडित, सेठ और त्यागियों का तिगड्डा धर्म को डुबो रहा है जब कि कभी इन्हीं ने धर्म की प्रभावना की। सब पैसा, यश, परिग्रह के वशीभूत हैं—जब कि जैनत्व का प्रचार इनसे सदा अछूता है।

—पं० पद्म चन्द्र जैन शास्त्री, दिल्ली

लेख पठनीय हैं। कुरीतियों पर अच्छा प्रहार है। जैन धर्म की प्रस्तुति भगवान महावीर की गरिमा के अनुरूप है। सुधारवादी विचारों के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

—श्री महावीर प्रसाद जैन, दिल्ली

इस बार साहित्य सत्कार खण्ड अधिक रुचिकर लगा, कुछ पुस्तकें खरीदने के लिए चुनने का मौका मिला।

—श्री सुन्दर सिंह जैन, दिल्ली

आप इस पत्रिका के द्वारा अभूतपूर्व सामग्री प्रेषित कर रहे हैं जो अन्य पत्रिकाओं से प्राप्त नहीं होती है।

—श्री आनन्द प्रकाश जैन, हस्तिनापुर

जैन समाज और विचारों को आपकी पत्रिका से कितना लाभ हो रहा है या हुआ है, यह कुछ पंक्तियों में नहीं कहा जा सकता। कृपया यह सेवा निस्वार्थ भाव से करते रहें, यह मेरी अपील है।

—डा० विनोद कुमार तिवारी, रोसेड़ा (समस्तिपुर)

पत्रकारिता जगत में **शोधादर्श** पत्रिका अपनी अद्वितीय, अनूठी छवि लेकर प्रकाश में आ चुकी है। **शोधादर्श** का ३१वां अंक मेरे हाथों में है। पिछले अंकों की भांति इस अंक में भी विशिष्ट सामग्री का चयन कर पाठकों की ज्ञान तृषा को शान्त कराने में अपनी अहं भूमिका का निर्वाह सम्पादक मण्डल का रहा है। पत्रिका की बाट जोहता रहता हूँ।

—ब्र० संदीप जैन 'सरल', बीना (सागर)

सामग्री अत्यन्त उपयोगी है।

—श्री रंजीत सुन्दर दास जैन, आरा

इस अंक के सभी लेख ज्ञानवर्द्धक हैं। साथ में अनेक प्रकार के समाचार आदि भी उल्लेखनीय हैं। आपका लेख 'चक्रवर्ती भरत का ऐतिह्य' मुझे बहुत पसन्द आया।

जानकारी हेतु लिख रही हूं कि यह समाचार सत्य नहीं है कि आचार्य श्री विमल सागर की पुण्य तिथि के अवसर पर उनके शिष्य ज्ञान दिवाकर आचार्य श्री भरत सागर उपस्थित थे। उस समय आचार्य श्री चंपापुरी में थे। इसलिए निर्वाण महोत्सव के कार्यक्रम में उनके अनुमोदन का कोई अर्थ ही नहीं है। अन्य आचार्य भरत सागर वहां उपस्थित थे।

–डा० जैनमती जैन, आरा

[हमें यह जानकारी नहीं थी कि आचार्य भरत सागर म० नाम के दो आचार्य विद्यमान हैं जिससे हम भ्रम वश मधुबन शिखर जी में स्व० आचार्य श्री विमलसागर म० की पुण्य तिथि समारोह में उपस्थित आचार्य श्री भरत सागर जी को स्वर्गीय आचार्य श्री के शिष्य प्रवर समझने की गलती कर बैठे। इसका हमें खेद है तथा इसके लिए हम स्व० आचार्य श्री के पट्ट शिष्य ज्ञान दिवाकर आचार्य भरत सागर म० से क्षमा याचना करते हैं।

–अजित प्रसाद जैन]

सम्पादकीय में आपने समाज को राष्ट्रीय संग्रहालय का सुझाव देकर वास्तव में नई दिशा दी है। यह कार्य मन्दिरों में चोरियां रोकने में बहुत ही कारगर सिद्ध हो सकता है।

मेरा सुझाव है कि जैन बन्धुओं द्वारा जो धन वैभव के रूप में मन्दिरों, मूर्तियों, छत्र, चमर इत्यादि में लगाया जाता है उसके स्थान पर यदि वह धन ईसाई मिशनरी की भांति शिक्षा व चिकित्सा में, मुस्लिम समाज की भांति जमात भेजने में तथा आदरणीय बाबूलाल जमादार द्वारा शुरू की गई व डा० नीलम जैन (सहारनपुर) द्वारा प्रस्तुत सराक जाति के उत्थान जैसी योजनाओं पर खर्च किया जाये तो हम समाज की धरोहर को चोरियों से भी बचा सकेंगे और धर्म का प्रचार-प्रसार होने के साथ-साथ हमारी संख्या भी बढ़ सकेगी।

–श्री शरद कुमार जैन, नजीबाबाद

सम्पादकीय 'मन्दिरों से चोरिया' में सुधि सम्पादक ने इस ज्वलन्त समस्या के समाधान के लिए एक राष्ट्रीय जैन संग्रहालय स्थापित करने का जो सुझाव दिया है वह जैन मन्दिरों की अमूल्य सम्पदा की सुरक्षा की दृष्टि से उपयोगी एवं व्यवहारिक सुझाव है। जैन समाज को इस विचार बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित कर इस दिशा में प्रयत्नशील होना चाहिए।

शोधादर्श के लगभग प्रत्येक अंक में प्रसिद्ध इतिहासविद् एवं प्रखर चिन्तक स्व० डा० ज्योति प्रसाद जी के एक आलेख को प्रकाशित कर पत्रिका शोधार्थियों को जो ज्ञानवर्द्धक सामग्री परोस रही है उसके लिए आप साधुवाद के पात्र हैं। प्रस्तुत अंक में "Mahavira in the Buddhist Literature" आलेख एक संग्रहणीय दास्तावेज है। आदरणीय डाक्टर साहब के इन बहुविध आलेखों को पढ़कर सहसा विश्वास नहीं होता कि एक जिन्दगी में इतना भगीरथ सारस्वत प्रयत्न कैसे कर लिया गया।

डा० प्रचंडिया का बारहमासा में बारहभावना का अनुचिन्तन उनके गहन अनुसन्धान एवं रोचक प्रस्तुति का मनोहारी उदाहरण है। इस आलेख ने श्री विनोदी लाल के 'नेमि राजुल बारहमासा' कृति के अध्ययन की उत्सुकता जागृत की है। 'चक्रवर्ती भरत का ऐतिह्य' एवं 'जैन दर्शन, अध्यात्मवादी काव्य और कबीर' लेख भी पाठकों का पर्याप्त ज्ञानवर्द्धन करते हैं। प्रस्तुत अंक पठनीय एवं संग्रहणीय सामग्री से परिपूर्ण है।

—डा० (कु०) मालती जैन, मैनपुरी

शोधादर्श को मैं बहुत रूचि पूर्वक पढ़ता हूं और अगले अंक की इन्तजार भी बनी रहती है। **शोधादर्श** के सभी लेख रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक हैं। वर्तमान समय में मुनियों में शिथिलाचार बहुत ही अधिक बढ़ता जा रहा है। आपके लेखों से पता चल जाता है कि आप तो इससे अवगत हैं ही, साथ ही इससे चिन्तित भी हैं। अभी पिछले दिनों मैं देहरादून में था। वहां पुष्पदन्त महाराज एक विधान करा रहे थे। वहां वे बार-बार स्त्रियों को नृत्य करने के लिए प्रेरित

कर रहे थे—"इन्द्राणियों अपने जलवे दिखाओ", "घर पर तो बहुत खुलते हो उससे तो पाप बंध होता है, यहां खुलोगे तो पुण्य बन्धेगा" —ऐसी-ऐसी अनेकों बातें अपने प्रवचनों में कहीं। एक मन्त्र के बारे में बताया कि यदि उस मन्त्र को पढ़कर सास अपनी बहू को या बहू सास को धोखे से पानी पिला दे तो वह उसके वश में हो जायेगी। तदपि एक ऐसे निष्परिग्रही मुनि भी इस इलाके में घूम रहे हैं जिन्हें वास्तव में नाम की कोई चाह नहीं हैं, बहुत ही सरल हैं और हमेशा वीतरागता की ही बात करते हैं। वे हैं आचार्य शांति सागर जी के शिष्य श्री धर्म भूषण जी। शास्त्र भी साथ में केवल १ या २। वह भी जहां पूरा पढ़ा वहीं मन्दिर में छोड़ दिया।

—श्री नवनीत जैन, सम्पादक, **मासिक युवा वाङ्मय**, मेरठ

लेख सभी रोचक हैं, बार-बार पढ़ रहा हूँ। विद्या भूषण सन्मति सागर का चातुर्मास बड़ौत हो रहा है। हमने तो जब वे मेरठ थे तब भी दर्शन करने का सौभाग्य नहीं लिया, बड़ौत भी नहीं जायेंगे। लाभ कुछ नहीं है। अज्ञानी जनता को अपनी ओर कर ही लेते हैं। यहाँ अभी हाल में **अमर उजाला** में भी काफी निकला है। पुष्पदन्त महाराज भी मुजफ्फरनगर में हैं। लोगों को उल्लू बनाने में काफी चतुर हैं। शिष्य भी एक से बढ़कर एक हैं। आज की जनता को ऐसे ही ड्रामेबाजों की जरूरत है। इनके भ्रष्टाचारों से समाज सारा अवगत है परन्तु कोई उनकी पोप-लीला पर कह नहीं सकता।

—श्री हुकम चन्द जैन, मेरठ

श्री अजित प्रसाद जी का राष्ट्रीय जैन संग्रहालय का सुझाव समयोचित है। इस पर समाज के नेताओं का ध्यान जाना चाहिये।

—डा० ऋषभ चन्द्र जैन, वैशाली

अंक ३१ हमेशा की तरह महत्त्वपूर्ण लेखों से समृद्ध है। श्रम-पूर्ण सम्पादन के लिए आप बधाई के पात्र हैं। पत्रिका की प्रतीक्षा बनी रहती है। प्रत्येक दृष्टि से पत्रिका में सम्पूर्णता है।

—डा० (श्रीमती) सुनीता कुमारी, रुड़की

जिनेश्वरों के स्मरण, भक्ति, आज्ञापालन व साधना से उनका सेवक निर्भय बने यह उनका उपदेश है, आज वे ही हमारे जिनेश्वर चोरों के भय से ताले में जकड़े रहते भी सुरक्षित नहीं हैं !

सभी लेख संग्रहणीय हैं। लेखक भी आपने अच्छे शिक्षित वर्ग में से खोज रखे हैं। भाषा-शैली सभी लेखों की अति उत्तम है, राग द्वेष का जिसमें लेश भी नहीं दिखता है। सभी धार्मिक पत्रिकायें यह नियम कर लें कि ऐसे निष्पक्ष तटस्थ समत्ववर्धक ही पंक्ति-लेख-पत्र छापे जायेंगे तो आज जैन समाज का २५% राग-द्वेष का कचरा धुल सकता है।

—श्री तिलोक मुनि, राजकोट

पत्रिका मैंने पढ़ी। मुझे बहुत अच्छी लगी।

—श्री कमल कुमार जैन, सिरसा (हरियाणा)

यूं तो इस पत्रिका ने प्रत्येक अंक में सामग्री की बहुलता, बहुविध सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों का सजीव चित्रण देते हुए जैन एवं जैनेतर पाठकों में विशिष्ट पहचान बना ली है, ज्वलन्त प्रश्नों के सप्रमाण समाधान प्रस्तुत कर स्तरीय श्रेष्ठता भी सिद्ध कर दी है।

चिन्तन कण, साहित्य सत्कार, समाचार विमर्श, समाचार विविधा, सचमुच अनुपम स्तम्भ हैं। हाँ, विचार बिन्दु एवं समाचार विमर्श तो आपकी पैनी कलम के प्रतीक बन पड़े हैं जो पग-पग पर श्रावकों को मानों सावधान करते हैं। ज्ञानवर्द्धक पृष्ठों युक्त पत्रिका का अक्षर-अक्षर प्रेरणापूर्ण, शिक्षाप्रद रहता है। इस प्रकार **शोधादर्श** साहित्यिक जगत का सजीव किन्तु सार्थक संदेशवाहक, सिरमौर मंच है।

अंक ३१ में प्रायः सूचनात्मक तथ्यों से परिपूर्ण बहुसंख्यक पृष्ठों में पाठ्य सामग्री संकलित/विवेचित है किन्तु है यह विशुद्ध रूपेण अति महत्त्वपूर्ण। कुल मिलाकर यह अंक संग्रहणीय बन गया है।

–श्री मोतीलाल जैन "विजय" एवं **श्रीमती विमला जैन**, कटनी

—०—

इस अंक के लेखक

श्री अजित प्रसाद जैन : उप सचिव, उ० प्र० शासन (अ. प्रा.)
महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ-२२६००४

डा० अरविन्द कुमार श्रीवास्तव : उप निदेशक, संस्कृति विभाग
का० निदेशक, उत्तर प्रदेश जैनविद्या शोध संस्थान
जवाहर भवन, नवम तल, अशोक मार्ग,
लखनऊ-२२६००१

डा० एम० डि० वसन्तराज : नं० ८६, नवां क्रास, नविलु रस्ते, कुवेम्पुनगर,
मैसूर-५७००२३

श्री गुलाब चन्द्र जैन : मेसर्स राज कमल स्टोर्स, सावरकर पथ,
विदिशा-४६४००१

डा० ज्योति प्रसाद जैन (स्व०) : विश्व-विश्रुत विद्वान

श्री त्रिभुवन प्रसाद तिवारी : आई.एं.एस. (अ.प्रा.), भूतपूर्व उप-राज्यपाल
बी २-५ विश्वास खण्ड, गोमती नगर,
लखनऊ-२२६०१०

श्री रमा कान्त जैन : उप सचिव, उ. प्र. शासन (अ. प्रा.)
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

आचार्य राजकुमार जैन : ११२ ए, ब्लाक सी, पाकेट सी,
शालीमार बाग, दिल्ली-११००५२

श्री शांतिलाल के० शहा : कुसुम बंगलो, राजवाडा, गणेश दुर्ग,
सांगली-४१६४१६

आचार्य शिवचन्द्र शर्मा : ११, गांधी कालोनी, सहारनपुर-४७४००१

डा० (श्रीमती) सुधा जैन सिन्हा : व्याख्याता, पार्श्वनाथ विद्यापीठ
आई.टी.आई. रोड, करौंदी,
वाराणसी-२२१००५

डा० शशि कान्त : विशेष सचिव, उ. प्र. शासन (अ. प्रा.)
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४